नीलकण्ठेश्वर

कालिंजर

प्रथम अध्याय

कालिंजर का परिचय

इस महानतम् विश्व में मानव ही एक ऐसा प्राणी है जिसने अपनी चिर स्मृतियां इतिहास के रूप में छोड़ी है। जिनकों देखकर तथा उसका विस्तृत अध्ययन करके हम उसके ऐतिहासिक महत्व को समझनें का प्रयास करते हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार यह पृथ्वी करोड़ों वर्ष पुरानी है। इसी प्रकार मानव का इतिहास भी लाखों वर्ष पुराना प्रतीत होता है, किन्तु जो स्मृतियाँ हमें इतिहास के रूप में उपलब्ध होती है। वह दस हजार ईसा पूर्व से अधिक प्राचीन नहीं हैं, हमारा इतिहास हमें गरिमामण्डित करता है और साथ ही साथ अपने पूर्वजों के जीवन के संदर्भ में सोचने और समझने को मजबूर करता है।

विश्व इतिहास में भारतवर्ष एक अत्यधिक प्राचीन देश है। यहां सभ्यता का उदय अति प्राचीन काल से ही हो गया था। विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में चीन की सभ्यता, ग्रीक की सभ्यता, बैबीलोनिया की सभ्यता तथा मिस्र की सभ्यता के साथ-साथ भारत की सिन्धु घाटी की सभ्यता, का उल्लेख सर्वत्र होता है। इस देश में आर्यो की सभ्यता का भी विकास हुआ तथा कालान्तर में विदेशी आक्रमणकारियों ने भी भारतवर्ष की भूमि को अपनी सभ्यता से प्रभावित किया है। कुषाण, हूण, शक, यूनानी, तुर्क आदि आक्रमणकारी इस भूमि पर आये। भारतवर्ष में प्रागैतिहासिक काल की सभ्यता के ऐतिहासिक चिन्ह शैलाश्रयों के रूप में अब तक उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक युगों के स्मृति चिन्ह-भग्नावशेषों, दुर्गो, राजप्रासादों, धार्मिक अवशेषों, तथा मूर्तियों के रूप में अब तक उपलब्ध होते हैं इन्हीं स्मृति चिन्हों ने भारतवर्ष के इतिहास को गौरवान्वित किया है और इनके द्वारा ही पूर्वजों की जीवन शैली और आचार-विचार का हमें पूर्ण ज्ञान हो जाता है। स्मृति चिन्हों के अतिरिक्त उपलब्ध ऐतिहासिक दस्तावेजों, प्राचीन ग्रंथों, यात्रा विवरणों, प्रचलित परम्पराओं तथा रीति-रिवाजों आदि से हमें प्राचीनकाल का युग बोध होता है। यह युग बोध ही हमारी प्रगति में सहायक होता है और भविष्य की परिकल्पना के साथ हम अपने पूर्वजों से अधिक प्रगति कर उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि प्रस्तुत करना चाहते हैं।

कालिंजर भारतवर्ष में विश्व का सर्वाधिक प्राचीन स्थल प्रतीत होता है, कालिंजर की प्राचीनता के विषय में यह श्लोक सारगर्भित है-

सद्युगे कीर्तिको नाम त्रेतायां च महद् गिरिः।
द्वापरे पिंगले नाम कलौ कालिंजरो गिरिः।।[1]

जो स्थल विश्व का प्राचीनतम् स्थल रहा हो, उसने निश्चित ही अनेक सभ्यताओं का अवलोकन अपने नेत्रों से किया होगा। यह स्थल केवल सभ्यता की दृष्टि से ही प्राचीनतम स्थल नहीं है अपितु धर्म की दृष्टि से भी इसका स्थान सदैव से महत्वपूर्ण रहा है।[2] शिव मूर्तियों का आधिक्य होने के कारण इसे मुख्य रूप से उत्तर भारत का शिव उपासना केन्द्र माना गया है। अनेक धार्मिक ग्रंथों में इसका उल्लेख अलग-अलग उपलब्ध होता है। इसे भगवान शिव के प्रसिद्ध नौ ऊखलों में से एक माना गया है।[3]

यथा-

रेणुका शूकरः काशी, काली काल बटेश्वरौ।

कालिंजर महाकाल, ऊखला नव मुक्तिदाः।।

विश्व उपासना के अतिरिक्त इस क्षेत्र में विष्णु, जैन तथा बौद्ध मत से सम्बन्धित अनेक मूर्तियां और स्थल उपलब्ध होते है। कुछ स्थल तांत्रिकों और निराकार ब्रह्म उपासकों के भी उपलब्ध होते हैं।[4]

कालिंजर का राजनीतिक दृष्टि से बहुत अधिक महत्व रहा है। साथ ही यहां की राजनीति अत्यन्त प्राचीन भी है।महाभारत आदि ग्रंथों में पाण्डवों के निवास का उल्लेख यहां उपलब्ध होता है। ऐसा कौन सा आकर्षण था, जिसके कारण आदिकाल से लेकर अब तक हर नरेश कालिंजर का शासक बनने का स्वप्न देखता था। अति प्राचीन काल में जब से राज व्यवस्था का उदय हुआ, उस समय से यह क्षेत्र चेदि वंशीय नरेश उपरिचरि बसु के आधीन था और इसकी राजधानी सुक्तिमती नगरी थी।[5] त्रेतायुग में यह क्षेत्र कौशल राज्य के अन्तर्गत था। भगवान श्री राम ने कुत्ता मारने के अपराध में दण्ड स्वरूप ही कालिंजर भरवंशीय ब्राम्हणों को दे दिया था। इसके ऐतिहासिक साक्ष्य बाल्मीकि रामायण में उपलब्ध होते हैं।[6] द्वापर युग में यह क्षेत्र चेदि वंशियों के आधीन था। जिसका शासक शिशुपाल था। उसके पश्चात यह क्षेत्र राजा विराट के आधीन रहा।[7] ईसा पूर्व छठवीं शताब्दी में यह क्षेत्र राजनीतिक दृष्टि से चेदि जनपद का एक भाग था। पालि जातकों में महात्मा बुद्ध की यात्रा का वर्णन है। वे सुक्तिमती, भरहुत, कुचेहरा होते हुए विदिशा तक गये।[8] उसके पश्चात यह क्षेत्र राजनीतिक दृष्टि से मौर्यो के आधीन रहा। बाँदा गजेटियर तथा मौर्य काल के उपलब्ध इतिहास में अनेक ऐसे साक्ष्य हैं। जिनसे इस बात की पुष्टि होती है।[9] गुप्त युग में यह क्षेत्र गुप्तों के आधीन हो गया है उस समय यह बिन्ध्य आटवीं के नाम से विख्यात था। गुप्त कालीन शासक समुद्र गुप्त का जो अभिलेख (प्रयाग प्रसस्ति) के रूप में इलाहाबाद में उपलब्ध हुआ है। उसमें इस क्षेत्र को गुप्तों के आधीन स्वीकार किया गया है।[10] गुप्तों पश्चात यह सम्राट हर्षवर्धन के राज्य का एक अंग था। हर्ष वर्धन के युग में इस क्षेत्र का राजनीतिक महत्व कम नहीं था। सुप्रसिद्ध साहित्यकार बाणभट्ट ने हर्षचरित सार और कादम्बरी में इसे विन्ध्य आठवीं के अन्तर्गत रखा है। हर्षवर्धन की बहन राजश्री यहीं सती होनें के लिए आई थी। जिसे हर्षवर्धन ने सती नहीं होने दिया। हर्षवर्धन से लेकर नागभट्ट द्वितीय के समय तक यह क्षेत्र राजनीतिक दृष्टि से गुर्जर प्रतिहारों के ही आधीन रहा तथा चन्देल नरेश उनके ही अधीन कार्य करते रहे। गुर्जर प्रतिहारों के पतन के पश्चात जब गुर्जर प्रतिहार राजाओं से चन्देल सामंत स्वतन्त्र हुए तब यह क्षेत स्वतंत्र रूप से चन्देलों के आधीन हो गया और उस समय यह स्थल राजनीति का प्रमुख केन्द्र बन गया।[11] चन्देल नरेशों ने कालिंजर, अजयगढ़, मड़फा, रसिन, महोबा, मनियागढ़ , देवगढ़, तथा गोपीगढ़ (ग्वालियर) तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया। पृथ्वीराज के आक्रमण के पश्चात जब परमर्दिदेव पराजित हुआ, उस समय इस राज्य का विभाजन हो गया। चन्देलों का पतन भी प्रारम्भ हो गया।

महाकवि जगनिक ने वीर योद्धा आल्हा-ऊदल का गुणगान करते हुए, कालिंजर दुर्ग के लिए यह ठीक ही कहा था-

किला कालिंजर का मांगत है।

बैठक मांगे ग्वालियर क्यार।।[12]

इसी प्रकार पृथ्वीराज रासो के अनेक स्थलों में कालिंजर के संदर्भ में वर्णन मिलता है। इसमें कवि चन्दवरदाई ने पृथ्वीराज की महोबा विजय का गुणगान किया है।[13] इसके अतिरिक्त अनेक शिलालेख भी उपलब्ध हुए हैं, जिसमें कालिंजर की प्रशस्ति तथा चंदेल नरेशों का गुणगान है। यह अभिलेख दसवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी तक के हैं कालिंजर दुर्ग के अतिरिक्त यह खजुराहों, अजयगढ़ तथा चन्देल राज्य से सम्बन्धित स्थलों में उपलब्ध होते हैं।[14] कुतुबुद्दीन ऐबक के कालिंजर आक्रमण के पश्चात यह सत्ता पूरी तरह धरासाई हो गई।[15] इसी के आगमन से इस राज्य की शक्ति पूरी तरह से समाप्त हो गई। इसके बाद भी यहां का वैभव अति धीमी गति से सांस लेता रहा।[16] इस क्षेत्र में मुगल शासक हुमायूँ ने भी दो बार आक्रमण करने का प्रयत्न किया था।[17] फिर शेरशाह सूरी ने सन् 1544-45 के लगभग कालिंजर में आक्रमण किया और उसकी मृत्यु भी कालिंजर क्षेत्र में ही हुई।[18] उसके बाद यह क्षेत्र कुछ समय के लिए रामचन्द्र बघेल के अधिकार में आया। तत्पश्चात सम्राट अकबर के आधीन हो गया। औरंगज़ेब के समय तक यह मुगलों के अधिकार में रहा।उसके पश्चात बुन्देला नरेश छत्रसाल के आधीन हो गया। सन् 1812 तक यह क्षेत्र छत्रसाल के सामतों के आधीन रहा। जब रामकृष्ण चौबे यहां का किलेदार था, उस समय यह अंग्रेजों के आधीन हो गया।[19] उसके पश्चात ही इस क्षेत्र का राजनीतिक अस्तित्व समाप्त हो गया।

वस्तुकला की दृष्टि से इस क्षेत्र के महत्व पर प्रकाश डाला जाये तो निश्चित ही यहाँ का वस्तुशिल्प और मूर्तिशिल्प अत्यन्त उच्चकोटि का था। इसमें गुप्त शैली,गुर्जर प्रतिहार शैली तथा पंचायतन नागरीय शैली के दर्शन होते है।[20] ऐसा लगता है कि वास्तुकारों ने इस क्षेत्र की संरचना अग्निपुराण,बृहदसंहिता तथा अन्य वास्तु ग्रंथों से प्रेरणा लेकर की है। निश्चित ही कालिंजर विश्व की बहुमूल्य ऐतिहासिक धरोहर है।[21] इस प्राचीनतम स्थल कालिंजर में आज भी अनेक ऐसे स्थान हैं, जो न केवल बुद्धिजीवियों को अपितु विभिन्न पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, तथा मौन भाषा में अपने प्राचीनतम गौरवगाथा का गुणगान करते है।[22] यह सौभाग्य है कि कालिंजर भारत वर्ष का एक महत्वपूर्ण स्थल है और कालिंजर आज भी भारत को गरिमा मण्डित कर रहा है।

यह एक विचारणीय प्रश्न है कि कालिंजर आदिकाल से ही विश्व विख्यात कैसे हुआ? अनेक विदेशी शासकों ने इसे जीतने की योजना क्यों बनाई? इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र की लोकप्रियता का कारण यहां की आर्थिक समृद्धि और यहां की अद्वितीय कला,संस्कृति है। इस संदर्भ में

ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होते है।[23] यह ईसा की दूसरी शताब्दी से लेकर सातवीं शताब्दी तक विश्व विख्यात हो चुका था। यहां के अधिपति केदार वर्मन का सम्बन्ध व प्रगाढ़ मित्रता फारस के बादशाह अफराशियाब से थी। इसके पश्चात अन्य देश भी कालिंजर की समृद्धि कला और संस्कृति से प्रभावित हुए। इसीलिए यह प्रमुख शैव संस्कृतिक का केन्द्र बन गया तथा बाद में बौद्ध,जैन,शक्ति,वैष्णव, आर्य तथा अनार्य संस्कृतियों ने भी इसे प्रभावित किया। इसीलिए वेदों, पुराणों तथा धार्मिक ग्रंथों ने इस क्षेत्र को महान तीर्थ स्थल की संज्ञा दी है। मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम एवं महाभारत के प्रमुख नायक अर्जुन और अन्य पाण्डवों ने भी इस स्थल को देखा।[24] इसीलिए यह प्रचारित और प्रसारित भी हुआ।

आर्थिक दृष्टि से इसकी समृद्धि के कई कारण थे। जो वास्तुशिल्प यहां निर्मित हुआ। वह कोई निर्धन शासक नहीं करा सकता। जिस राज्य के आर्थिक स्रोत बहुत ही अच्छे होंगे वे ही इतने सुदृढ़ दुर्ग, देवालय एवं जलाशयों का निर्माण करा सकते हैं, इसकी अर्थिक सुदृढ़ता का एक और उदाहरण उपलब्ध होता है। महमूद गजनवी ने इस क्षेत्र में सन् 1022 में आक्रमण किया, उस समय वह अरबों की सम्पत्ति यहां से लूट कर ले गया। परन्तु फिर भी इस क्षेत्र ने छः महीने में ही उस आक्रमण की क्षति को पूर्ण कर लिया। [25] सुप्रिसद्ध इतिहासकार अल्बरूनी ने इस क्षेत्र की आर्थिक सुदृढ़ता सम्पन्नता और विभिन्न प्रकार की संस्कृति का अनेक स्थलों में वर्णन किया है। सम्राट अकबर के नौ रत्नों में एक अबुल फजल ने अपनी सुप्रिसद्ध पुस्तक "आइने अकबरी" में लिखा है कि कालिंजर के आस-पास अच्छे किस्म के हीरे उपलब्ध होते थें। [26] इस बात की पुष्टि पूरी तरह से की जा सकती है। क्योंकि कालिंजर के सन्निकट पहाडी खेरा क्षेत्र में आज भी उत्तम कोटि के हीरे उपलब्ध होते हैं। ऐसे साक्ष्य भी मिले हैं कि कालिंजर के सन्निकट कुठला जवारी के जंगल में एक प्रकार का लाल कंकड प्राप्त होता था जिससे सोना बनाया जाता था। जब राजा अमान सिंह कालिंजर के शासक थे, उस समय उन्होंने स्वर्ण खदानें खुदवाईं थी तथा उन खदानों से अरबों-खरबों का स्वर्ण प्राप्त किया था। आज भी खैरार जाति के लोग इन लाल चमकीले कंकडों से स्वर्ण बनाते हैं। इसके अतिरिक्त रसिन,वीरगढ़ मड़फा तथा रौलीगोंडा क्षेत्र में अन्य कीमती पत्थर उपलब्ध होते हैं जो उस युग की आर्थिक समृद्धि के कारण थे। कालिंजर क्षेत्र के सन्निकट ही कीट पहाड़ी,चुम्बक पहाड़ी तथा कौहारी के आस-पास ताँबा ,लोहा तथा अन्य कीमती धातुओं का पता लगा है। निश्चित ही जिन स्थानों में बेसुमार खनिज सम्पदा होगी। वे आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न क्षेत्र होंगे। यहीं के अनेक क्षेत्रों में कीमती आभूषण, अति सुन्दर वस्त्र एवं धातु के बर्तन निर्मित होते थें। इन सब वस्तुओं का निर्यात व्यापारियों के द्वारा अन्य राज्यों में किया जाता था और व्यापारी उनके बदले में सोना,चांदी व कीमती रत्न इस क्षेत्र में लाते थे। जो राज्य की आय और समृद्धि के कारण थे।[27] इस धन से सामान्य जन-जीवन सुखी था, कलाकार प्रोत्साहित थे। राजसत्ता को प्रचुर मात्रा में कर की उपलब्धि होती थी। चंदेल नरेशों के समय की आर्थिक समृद्धि के बारे में यह कहा जा सकता है कि अनेक स्थलों में जो ताम्रपत्र उपलब्ध हुए हैं। उनमें

नरेशों सामन्तों की दानवीरता के उत्कृष्ट उदाहरण उपलब्ध होते है। इसके अतिरिक्त अनेक अभिलेखों में उनकी उदास्ता तथा दानवीरता के वर्णन हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि इस क्षेत्र की आर्थिक सुदृढ़ता ने ही यहां की कला और संस्कृति को जन्म दिया।

कालिंजर सुरक्षा की दृष्टि से भी ऐसे स्थल पर है जो उत्तर से दक्षिण जाने का मार्ग प्रसस्त करता है। इस संदर्भ मे एक साक्ष्य बाल्मीक रामायण में उपलब्ध होता है कि भगवान राम जब चित्रकूट छोड़कर अन्यत्र जाने की बात सोचनें लगे तो उन्होंने कालिंजर के सन्निकट स्थापित अगस्त्य ऋषि के आश्रम में आकर यह पूंछा कि हम आगे कहां और कैसे जायें। चूंकि अगस्त्य ऋषि विश्व भ्रमण कर चुके थे। इसीलिए उन्हें मार्गों का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने भगवान श्री राम को दक्षिण दिशा की ओर जाने की सलाह दी । यहीं से वह दक्षिण दिशा की ओर गयें।[28] पालिजातकों में कौशाम्बी से दक्षिण जाने के मार्ग को कालिंजर और चेदि राज्य के मध्य भाग से बतलाया है। चेदि राज्य की राजधानी गिरवाँ के सन्निकट शेरपुर स्यौढ़ा थी । जो सुक्तिमती नगरी के नाम से विख्यात थी। जब यह दुर्ग गुर्जर प्रतिहारों के अधिकार में आया उस समय इस दुर्ग ने उत्तर और दक्षिण दोनों स्थलों के नागरिकों की रक्षा शत्रुओं से की थी। नन्नुक देव से लेकर परमार्दिदेव तक चन्देल नरेशों ने अपनी सैन्य शक्ति का विस्तार किया। यह क्षेत्र भारतवर्ष की महान सैन्य शक्तियों में से एक हो गया। कालिंजर दुर्ग की सुदृढ़ता का वर्णन प्रसिद्ध विद्वान अल्बरूनी के अतिरिक्त आल्हाखण्ड के रचयिता जनकवि जगनिक ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ में की है। पृथ्वीराजरासो में भी कालिंजर दुर्ग की सुदृढ़ता का वर्णन है। इस बात के ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते है। कि सैन्य शक्ति केन्द्र के अतिरिक्त कालिंजर कभी चन्देल नरेशों की प्रशसनिक एवं धार्मिक राजधानी भी रहा होगा। प्रशासनिक राजधानी के रूप में महोबा से ऐतिहासकि साक्ष्य अधिक उपलब्ध होते हैं। इसी प्रकार खजुराहों परिक्षेत्र को धार्मिक राजधानी के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। क्योंकि इस क्षेत्र में हिन्दू एवं जैन सम्प्रदाय के सर्वाधिक धार्मिक स्थल उपलब्ध होते है। जो वास्तुकला की दृष्टि से सम्पर्ण विश्व में अपने उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते है। ऐतिहासिक साक्ष्य की दृष्टि से कालिंजर दुर्ग सैन्य शक्ति का प्रमुख केन्द्र चंदेल शासन काल तक रहा। इसके पश्चात बघेलों और बुन्देलों के शासन काल में इसकी सैन्य शक्ति क्षीण हो गई। यह केवल धार्मिक स्थल के रूप में रह गया, और अनेक सामंतों के आधीन भी हो गया। अल्प समय के लिए यह क्षेत्र कलचुरियों, राष्ट्रकूटों, मुसलमानों के भी हाथ में रहा।[29] सन् 1812 के बाद यह क्षेत्र अंग्रेजों के आधीन हो गया। यह मात्र ऐतिहासिक साक्ष्य और हमारी स्मृतियों में ही शेष रह गया[30]

कालिंजर आज भले ही निष्प्राण हो समृद्धि हीन हो, किन्तु उसका जर्जर कलेवर आज भी उसकी वैभव गाथा को अपनी मौन वाणी से दोहरा रहा है, और हमें इस बात के लिए प्रेरित कर रहा है कि देश की आजादी के 50 वर्षो बाद भी उसके ही सपूत उसके उत्थान की कोई बात नहीं सोंच पायें । उत्थान की योजनायें तो बनती ही रहती हैं किन्तु वे शीघ्र ही कालकौलित हो जाती हैं आवश्यकता इस बात की है

कि कालिंजर के अतीत का मूल्यांकन करते हुए उसकी ऐतिहासिक गरिमा तथा उसकी संस्कृति और धार्मिक भावना को नष्ट होने से बचाया जायें। यहां की लोक संस्कृति,कला संस्कृति,पुरावशेषों तथा साहित्य को सुरक्षित रखा जाये। विश्व ऐतिहासिक धरोहर के रूप में इसे विकसित किया जोये और इस भूमि में अनेक स्थलों को पर्यटक स्थल के रूप में विकसित करके आवागमन की सुविधाओं को बढ़ाया जाये।

1. कालिंजर का भारतवर्ष एवं उत्तर प्रदेश के मानचित्र में स्थान :-

भारतवर्ष एक ऐसा देश है जहां ज्ञान का सूर्य सर्वप्रथम उदित हुआ। यह आलोक जो सूर्य की रश्मियों से हमें उपलब्ध हुआ था। वह सम्पूर्ण विश्व को आलोकित करने में सफल हुआ। एशिया महाद्वीप के दक्षिण में अरब सागर बंगाल की खाड़ी तथा हिन्द महासागर से घिरा हुआ एक विशिष्ट संस्कृतियों वाला देश है। जिसे भारतवर्ष के नाम से पुकारा जाता है। इसके उत्तर में नीलाम्बर की ऊँचाई वाला हिमालय पर्वत है जो मात्रभूमि के किरीट के सदृश हैं। इसकी चोटियाँ सदैव तुषार और हिम से आच्छादित रहती हैं। इससे सटे हुए जम्मू काश्मीर ,पंजाब, असम,मेघालय,नागालैण्ड, आदि प्रदेश राष्ट्र की शोभा बढ़ाते हैं। इसके पूर्व में बंगाल,पश्चिम में महाराष्ट्र, गुजरात,दक्षिण में कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश,तमिलनाडु जैसे विशिष्ट संस्कृतियों वाले प्रदेश हैं। जिनकी भाषा और संस्कृति बिल्कुल पृथक हैं। भारतवर्ष के मध्य क्षेत्र में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, जैसे प्रान्त है, जिन्हें हृदय प्रदेश के रूप में मान्यता प्राप्त है। देवपुरूष और परमात्मा के रूप में अवतरित मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान श्री राम, भगवान श्री कृष्ण और बौद्ध धर्म के प्रणेता महात्मा बुद्ध इसी क्षेत्र में अवतरित हुए। इस सम्पूर्ण क्षेत्र को जो कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और बंगाल से लेकर महाराष्ट्र तक फैला हुआ है। उसे हम भारत खण्ड, आर्यावर्त, ब्रह्मावर्त आदि नामों से पुकारते है।

प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त भारतवर्ष आज एक विभिन्न संस्कृतियों वाले देश के रूप में हमें उपलब्ध होता है। यहां पर लगभग तीस भाषायें बोली जाती है। और सभी रंगों के व्यक्ति यहां निवास करते हैं। ये व्यक्ति आर्य,अनार्य, राक्षस ,दैव-दनुज,यक्ष तथा मानव कुल के हैं। आवागमन के साधनों के अभाव में अलग-अलग स्थानों में अलग-अलग संस्कृतियों ने जन्म लिया। शायद इसीलिये अलग-अलग भाषाओं को प्रोत्साहन भी मिला । यहां पर काले, गोरे, लम्बे और ठिगने सभी प्रकार के लोग निवास करते हैं। सांस्कृतिक भिन्नता के होते हुए भी यहां धर्म सामंजस्य और संस्कृति सामंजस्य के दर्शन होते हैं। जिस देश में किसी युग में केवल 32 करोड़ व्यक्ति ही निवास करते थे, उस देश में आज लगभग 97 करोड़ व्यक्ति निवास करते हैं।

यह देश विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों के दौर से गुजरा है। इन संस्कृतियों का काल आज से लगभग दस हजार वर्ष पूर्व प्रतीत होता है। सुप्रसिद्ध इतिहासकारों ने इस क्षेत्र में द्रविण संस्कृति के अवशेष खोजे हैं ये अवशेष मोहन जोदाडों, हड़प्पा तथा राजस्थान के कुछ भागों में उपलब्ध हुए है।[31] इसके पहले का काल पूर्व पाषाण युग और उत्तर पाषाण युग के नाम से विख्यात था। इसके अवशेष भी सम्पूर्ण भारतवर्ष में उपलब्ध

होते है। कुछ अवशेष तो बाँदा जनपद में भी प्राप्त हुए है।[32] इसका उल्लेख बाँदा गजेटियर के अतिरिक्त एम0 एल0 निगम द्वारा रचित **''कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड''** [33] के0 डी0 बाजपेयी ने अपनी पुस्तक **''कल्चरल हिस्ट्री आफॅ इण्डिया''** [34] में किया है। भारतवर्ष के अनेक स्थानों में बहुत ही सुन्दर शैलाश्रय उपलब्ध हुए है। जिनमें अनेक प्रकार के शैलचित्र है। जिनसे आदिकालिक मानवों की रुचि का पता लगता है, रूचि के साथ-साथ यह तद्युगीन सभ्यता के सन्दर्भ में एक नया अध्याय खोलते हैं।

कालान्तर में भारतवर्ष में आर्यो का आगमन हुआ, जिन्होंने सम्पूर्ण भारतवर्ष में अनार्यो, यक्षों दानवों को परास्त करके आर्य सभ्यता को विकसित किया और दो प्रकार की शासन व्यवस्था इस देश को प्रदान की। पहली व्यवस्था गणराज्यों की थी, जिन्हें महाजनपदों के नाम से जाना जाता था, तथा दूसरी व्यवस्था राजतन्त्र अथवा सामन्तशाही व्यवस्था थी, जिनसे आगे चलकर अनेक राजवंशों का अभ्युदय हुआ। इनमें चोल, चालुक्य, कलचुरि, चन्देल, चौहान आदि प्रमुख थे। इन राजपूतों ने अपने शौर्य का प्रदर्शन किया। इनके सन्दर्भ में राजाश्रय में रहने वाले कवियों ने अनेक रासव ग्रंथों की रचना की थी। जिनमें पृथ्वीराज रासो, परमार्दिदेव रासो, वीसलदेव रासो, खुमान रासो, आदि प्रसिद्ध ग्रंथ है। इस युग के कवियों में चन्दरवरदाई ,जगनिक ,नरपतिनाल्ह, आदि प्रसिद्ध कवि है। इन्होंने राजपूत कालीन इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। बाँदा जनपद के आस-पास कालिंजर परिक्षेत्र में चिरकाल तक चंदेलों का अस्तित्व रहा। इस बात का पता भी इन्हीं रासों ग्रन्थों से उपलब्ध होता है। चंदेल काल के पतन के पश्चात भी भारतवर्ष में अनेक राजनीतिक परिवर्तन समय-समय पर होते रहें है। चूंकि कालिंजर क्षेत्र भारतवर्ष का अंग रहा है इसलिए उसका प्रभाव भी यहां देखने को मिलता है।

उत्तर भारत का गठन अंग्रेजी शासन काल में हुआ था। इसके पहले यह प्रान्त मुगल काल में आगरा एवं अवध के नाम से प्रसिद्ध था, जो सयुंक्त प्रान्त के नाम से विख्यात हुआ। और उत्तर प्रदेश कहलाने लगा। यदि अति प्राचीन इतिहास को अवलोकित किया जाये तो ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर प्रदेश, पांचाल देश, विन्ध्य आटवीं, डाभाल, युद्ध देश, मत्स्य देश तथा बज्र देश के नाम से विख्यात था। आर्यो के समय में उत्तर प्रदेश में कई गणराज्य थें। जो काफी सम्पन्न और विकसित थे।[35] महात्मा बुद्ध के समय तक इनका विकास चरम सीमा पर था। भारतवर्ष में जब सिकन्दर का आक्रमण हुआ उस समय गणराज्यों की शक्ति क्षीण हो गई थी और यहां भी राजतन्त्र स्थापित हो गया था। उत्तर प्रदेश में सूर्य वंश और चन्द्र वंश दोनों ही शक्तिशाली राज्य थे। सूर्य वंश का प्रभाव अयोध्या तथा सम्पूर्ण सूर्य वंश का प्रभाव यदुवंशियों, चेदि और कलचुरियों के प्रभाव अयोध्या तथा सम्पूर्ण कौशल क्षेत्र में था। चन्द्र वंश का प्रभाव युदवंशियों, चेदि और कलचुरियों के रूप में देखा जा सकता है। कालिंजर क्षेत्र जो वर्तमान समय में उत्तर प्रदेश का एक अंश है वहां चन्द्र वंशीय चंदेलों का सर्वाधिक प्रभाव रहा। कुछ समय के लिए यह राष्ट्रकूटों, वाकाटकों और कलचुरियों के प्रभाव में भी रहा। दिल्ली नरेश पृथ्वीराज ने भी परमार्दिदेव के समय में इसे प्रभावित किया।

इसके पहले महमूद गजनबी ने भी यहां पर आक्रमण किया था। कालिजंर परिक्षेत्र उत्तर प्रदेश के दक्षिण में बाँदा जनपद का एक अंग है। इसकी सीमायें दक्षिण में मध्य प्रदेश के सतना-पन्ना-छतरपुर और रींवा जनपदों से मिलती है। उत्तर प्रदेश के मानचित्र में यदि कोई सर्वाधिक अति प्राचीन स्थल है तो वह केवल कालिंजर परिक्षेत्र ही है। जहां पर आदि काल से लेकर अब तक के ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध हो जाते है। विश्व में कोई ऐसा स्थान नहीं है जो प्राचीनता की दृष्टि से इससे अधिक प्राचीन हो। समस्त वेदों, पुराणों, धार्मिक ग्रंथों, ऐतिहासिक शौर्य गाथाओं, में कालिंजर क्षेत्र का एक विशिष्ट स्थान है। यह राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं अपतु धार्मिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थल रहा है। यदि मानव सभ्यता और आने वाला भविष्य इसे भुलाना भी चाहेगा तो भी वह ऐसा नहीं कर पायेगा। कालिंजर स्थल चिरस्मरणीय रहा है और सदैव चिरस्मरणीय रहेगा। जिसका अतीत गरिमा मण्डित रहा हो, उसे वर्तमान समय में भी गरिमा मण्डित बनाये रखना यहां के व्यक्तियों का पावन कर्त्तव्य है।

बाँदा जनपद उत्तर प्रदेश के महत्वपूर्ण जनपदों में से एक है। जिसकी सीमाएं पूर्व में इलाहाबाद,उत्तर में फतेहपुर ,पश्चिम में हमीरपुर तथा दक्षिण में रींवा,सतना, पन्ना तथा छतरपुर जनपदों से मिलती हैं। इस जनपद का इतिहास सदैव महत्वपूर्ण रहा है। इस जनपद में अनेक स्थलों पर अति प्राचीन सभ्यता के चिन्ह उपलब्ध होते हैं। डा0 कन्हैयालाल अग्रवाल ने अपनी सुप्रिसिद्ध पुस्तक **''विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल''** में इस क्षेत्र के ऐतिहासिक महत्व के स्थलों का वर्णन किया है।[36] इसके अतिरिक्त एस0 एम0 अली ने अपनी पुस्तक **''जाग्रफी ऑफ दी पुराणाज''** में इस क्षेत्र के अनेक स्थलों का वर्णन किया है। **''आइने अकबरी''** में अबुल फज़ल ने इस क्षेत्र को खनिज सम्पदा से युक्त बताया है। दीवान प्रतिपाल सिंह ने अपनी पुस्तक **''बुन्देलखण्ड का इतिहास''** में कई जगहों पर यहां के ऐतिहासिक महत्व के स्थलों का वर्णन किया है। गोरे लाल तिवारी ने **''बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास''** की रचना की है। उन्होने भी इस क्षेत्र के अगस्त्य ऋषि का आश्रम और कालिंजर के धार्मिक महत्व पर प्रकाश डाला है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार केशवचन्द्र मिश्र एवं अयोध्या प्रसाद पाण्डेय ने भी अपने प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रंथों में इस क्षेत्र का उल्लेख किया है। डा0 के0 डी0 बाजपेयी ने अपने ग्रन्थों में इस क्षेत्र पर प्रकाश डाला है। राधा कृष्ण बुन्देली ने भी अपनी पुस्तक और योग्यता से इस क्षेत्र के अनेक ऐतिहासिक स्थलों का वर्णन करते हुए उन्हें उजागर किया है निश्चित ही बांदा जनपद और उससे जुड़ा हुआ कालिंजर क्षेत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसमें संदेह नहीं किया जा सकता।

कालिंजर क्षेत्र बांदा मुख्यालय से 56 किलोमीटर और सतना मुख्यालय से लगभग 82 किलोमीटर दूर है। इस क्षेत्र में पहुंचने के लिए सड़क यातायात उपलब्ध हैं। वायु एवं रेल मार्ग की सुविधायें अभी उपलब्ध नहीं है। इस क्षेत्र में ऐतिहासिक और धार्मिक महत्व के अनेक स्थल है जिनका उल्लेख शोध प्रबन्ध के नियत स्थान पर किया जायेगा। यहां पहुंचने के लिए खजुराहो, पन्ना ,चित्रकूट, बदौसा, से भी साधन उपलब्ध

हो सकते है। आज यह क्षेत्र भले ही उपेक्षा का शिकार हो किन्तु जब भी कोई व्यक्ति इस स्थल को देखने आता है। वह यहां उपलब्ध पुरासम्पदा को देखकर प्रभावित होता है, और उसके महत्व को समझता हैं। किन्तु साथ ही साथ उन स्थलों की दुर्दशा को देखकर वह बहुत द्रवित और दुखी होता है। सम्पूर्ण विश्व भारत और उत्तर प्रदेश को प्रभावित करने वाला कालिंजर क्षेत्र निश्चित ही विश्व ऐतिहासिक धरोहर के रूप में संरक्षित किये जाने योग्य है। क्योंकि यहां की पुरासम्पदा, धर्म, संस्कृति और वास्तुकला की दृष्टि से बेजोड़ है [37] कालिंजर का महत्व किसी भी स्थिति में कम नहीं है।

2. कालिंजर के ऐतिहासिक साक्ष्य एवं उनका महत्वः-

यह महानतम् ऐतिहासिक स्थल कालिंजर केवल कोरी परिकल्पना नहीं है, अपितु अनादि काल से लेकर अनेक ऐसे साक्ष्य यहां पर उपलब्ध है जो इसकी प्राचीनतम् गरिमा को आलोकित करते हैं। यदि समस्त कालिंजर परिक्षेत्र में सर्वेक्षण करके देखा जाये तो इन ऐतिहासिक साक्ष्यों की संख्या अनगिनत होगी। ऐतिहासिक दृष्टि से इन साक्ष्यों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है और इनके आधार पर ही उपलब्ध साक्ष्यों का विश्लेषण भी किया जा सकता है। यह साक्ष्य निम्नलिखित है-

1.शैलाश्रय एवं शैलचित्र-

ऐतिहासिक दृष्टि से शैलाश्रय एवं शैलचित्र सर्वाधिक प्राचीन साक्ष्य माने जाते है, और इनका सीधा सम्बन्ध पाषाण युग से जोड़ा जाता है। यहां उपलब्ध शैलचित्र इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि मानव की बस्तियां इस क्षेत्र में अति प्राचीन काल से थी। यह शैलाश्रय मड़फा दुर्ग, फतेह गंज के सन्निकट सकरों मगर मुहा में उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त रसिन और कालिंजर दुर्ग की पहाड़ी में अनेक स्थलों पर शैलचित उपलब्ध हुए है । इस स्थल में नवीन शैलचित्रों की खोज भूतपूर्व पुलिस कप्तान श्री विजय कुमार ने की थी। इस सन्दर्भ में उन्होंने 'प्राग नामक एक पुस्तक भी प्रकाशित की है।[38] इसमें इस क्षेत्र के शैलचित्र उपलब्ध है। इसी प्रकार प्रसिद्ध इतिहासकार रौली ने कल्याणपुर के सन्निकट शैलचित्र खोजे हैं, जिनका उल्लेख "हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड" में मिलता है।[39] इन्हीं शैलचित्रों के साथ-साथ पत्थरों के कुछ टुकड़े भी उपलब्ध हुए है, जिन्हें इतिहासकार प्रस्तर कालीन अस्त्र-शस्त्र मानते है।[40] इसके अतिरिक्त कुछ शैलचित्र और शैलाश्रय बृहस्पति कुण्ड के सन्निकट पुतरही घाटी में उपलब्ध हुए है।

शैलचित्रों का निर्माण अधिकतर गेरुए रंग से हुआ हैं। इनमें अधिकतर पशुओं का छायांकन हैं।कहीं-कहीं मनुष्य और उनके द्वारा उपयुक्त सामग्री का चित्रांकन भी मिलता है।वास्तुकला की दृष्टि से फतेहगंज के शैलाश्रय में प्राप्त शैलचित्र अत्यन्त सजीव प्रतीत होते हैं।

2.आवासीय बस्तियों के अवशेष -

कालिंजर और उसका परिक्षेत्र अनेक स्मृतियाँ समेटे हुए है जिससे उसकी प्राचीनता का बोध आसानी से हो जाता है। कालिंजर में ही तरहटी,कटरा,बहादुरपुर तथा आस-पास के अनेक गावों में आवासीय

बस्तियों के अनेक खण्डहर उपलब्ध होते हैं। ये स्थल चन्देलयुग से लेकर बुन्देलों के युग तक के हैं। कालिंजर के अतिरिक्त मड़फा, फतेहगंज, रौलीगोंडा, रसिन, बिलहरिया मठ, सिधौरा, हुमायूँ की छावनी, नरदहा, पाथर कद्दार ,पहाड़ी खेरा, लखन सेहा, किशन सेहा आदि क्षेत्रों में प्राचीन बस्तियों के पुरावशेष प्राप्त हुए हैं। यदि इन स्थलों का व्यापक उत्खनन कराया जाये तो निश्चित ही इतिहास के नये प्रसंग इस क्षेत्र से जुडेगें। डा0 कन्हैया लाला अग्रवाल ने कालिंजर परिक्षेत्र को अति प्राचीन सिद्ध किया है। इसके अनेक उदाहरण भी उपलब्ध हुए है,[41] जो भी पुरावशेष कालिंजर परिक्षेत्र में प्राप्त हुये हैं यदि उनका मूल्यांकन वास्तुशास्त्र के अनुसार किया जाये तो वास्तव में इनका निर्माण अग्नि पुराण एवं बृहद्संहिता के अनुसार किया गया होगा। सभी वर्गों के अलग-अलग आवास, भिन्न-भिन्न व्यवस्था के अनुसार थे। निर्धनों के मकान छोटे व मिट्टी आदि के होते थे। मध्यम और धनीवर्ग के मकान चंदेल युग में प्रस्तर से निर्मित थे। उनमें विविध प्रकार की कारीगरी थी।मकानों में ड्योढ़ी ,स्तम्भ, द्वार तथा आवासीय कमरे थें। भवनों के मध्य में विशालकाय आंगन होता था। राजा और उसके मंत्रियों के आवास और भी सुन्दर हुआ करते थे। कलाकारों तथा धातुकर्मियों के मकान अलग होते थे।

चन्देल युग समाप्त होने के पश्चात इस क्षेत्र में तुर्कों और मुगलों का व्यापक प्रभाव पड़ा तथा बुन्देलों के समय तक निर्माण शैली में अनेक परिवर्तन होते रहे। बुन्देलों के समय में पतली ईटों और प्रस्तरों से मकानों का निर्माण होने लगा था। उनमें चूनें का पलस्तर किया जाने लगा था और अनेक प्रकार की कसीदाकारी का प्रयोग भवनों में होने लगा था। के0 सी0 मिश्रा ने अपनी पुस्तक में इसका व्यापक वर्णन किया है।[42] बृहद्संहिता के निर्देशों का पालन वास्तुनिर्माण में किया जाता था। ताकि मानवीय आवास किसी प्रकार से अमंगल सूचक न हों।[43] इस परिक्षेत्र में उपलब्ध आवासीय वस्तुओं के अवशेष चन्देल काल से लेकर मुगल काल और उसके बाद तक के प्राप्त होते हैं। यहां पर आवश्यकता केलव व्यापक उत्खनन की हैं। यदि इतिहास एवं पुरातत्व विभाग अपने निर्देशन में व्यापक परियोजना के साथ पाथर कद्दार ,नरदहा फतेहगंज और मड़फा के निकट उत्खनन करायेगा। तो निश्चित ही इन स्थलों में उन वस्तुओं की उपलब्धि प्रचुर मात्रा में होगी। जो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण होंगे। अभी तक इस परिक्षेत्र में सन् 1870 के बाद कोई विशेष सर्वेक्षण एवं शोध कार्य सम्पन्न नहीं हुआ है। इसीलिए इस क्षेत्र का नवीन ऐतिहासिक दृष्टि कोण भी सामने नहीं आ सकें हैं।

3. दुर्गावशेष -

कालिंजर मुख्य रूप से अपने सुदृढ़ दुर्ग के लिए ही सदैव से प्रसिद्ध रहा है। इस समय जो दुर्ग यहां उपलब्ध है, उसका अस्तित्व दूसरी शताब्दी से लेकर सातवीं शताब्दी के मध्य प्रकाश में आया। रक्षा की दृष्टि से सर्वोत्तम पर्वतीय और वनीय दुर्गों में से एक था जो शत्रुओं को उत्तर से दक्षिण की ओर किसी भी सूरत में आगे नहीं बढ़ने देता था। इसका निर्माण केदार वर्मन ने कराया था। कतिपय विद्वानों का मत है

कि यह दुर्ग महाभारत कालीन था तथा यह चेदि नरेश शिशुपाल के अधिकार में था, किन्तु इसका कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता है।

सुदृढ़ता की दृष्टि से यह दुर्ग प्राचीरवेष्टित (दिवारों से घिरा हुआ) था। इसकी दीवारें बहुत चौड़ी और बहुत ऊंची थीं। यदि इन दीवारों की तुलना चीन की दीवारों से की जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। दुर्ग के संदर्भ में प्रसिद्ध विद्वान केशव चन्द्र मिश्र ने व्यापक प्रकाश डाला है। वे कहते हैं कि कालिंजर दुर्ग मध्य कालीन भारत का सर्वोत्तम दुर्ग माना जाता था।[44] कालिंजर के संदर्भ में प्रसिद्ध विद्वान डॉ0 सुशील कुमार सुल्लेरे ने भी काफी प्रशंसा की हैं उनका मत है कि कालिंजर दुर्ग के प्राचीरों से कालिंजर नगर भी घिरा हुआ था। यह दुर्ग सामरिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण था। इसमें प्रवेश के लिए सात द्वार थे, जो अलग-अलग नामों से प्रसिद्ध थे।[45]

मड़फा दुर्ग-

मड़फा दुर्ग भी बहुत अधिक प्रसिद्ध था। चंदेलों का अस्तित्व समाप्त होने के पश्चात यह दुर्ग बघेलों के अधिकार में रहा। अकबर के समय में यहां का शासक रामचन्द्र बधेल था। इस दुर्ग के विषय में यह किवदन्ति है कि कालिंजर दुर्ग और मड़फा दुर्ग का निर्माण साथ-साथ हुआ था।

रसिन दुर्ग-

रसिन दुर्ग चंदेल कालीन है। यहां पर चंदेल शासक राज्य करते थे। यह दुर्ग भी एक पहाड़ी पर है। इसके ऊपर चन्द्रामाहेश्वरी का मंदिर तथा अनेक प्राचीन स्थल हैं। दुर्ग के नीचे भी आवासीय बस्तियों के अवशेष उपलब्ध होते है।

वीरगढ़ दुर्ग-

यह दुर्ग फतेहगंज की एक पहाड़ी पर है। कहते हैं कि बधेल राजा व्याध्र देव जब प्रारम्भ में यहां आये तो उन्होंने सर्वप्रथम वीरगढ़ दुर्ग में अपना अधिकार जमाया । बाद में उनके उत्तराधिकारियों ने मड़फा,कालिंजर तथा बाद में सम्पूर्ण बघेल खण्ड क्षेत्र में अपने राज्य का विस्तार किया।

पथरीगढ़ दुर्ग-

यह दुर्ग फतेहगंज के सन्निकट पाथर कद्दार में है। वास्तुशिल्प की दृष्टि से यह दुर्ग चंदेल युग के बाद का प्रतीत होता है। तुर्कों के शासन काल में यह दुर्ग तुर्कों के आधीन था उसके पश्चात यह मुगलों के कब्जे में आ गया बाद में यह दुर्ग छत्रसाल के अधिकार में रहा। इस दुर्ग में अनेक प्राचीन स्थल उपलब्ध हुए हैं।

इस क्षेत्र के मगरमुहा में शैलाश्रय एवं शैलचित्र प्राप्त हुए है। मगरमुहा दुर्ग के ऊपर अनेक पुरावशेष उपलब्ध हुये हैं। यह दुर्ग प्राचीरवेष्टित था और सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण भी था। इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिंजर परिक्षेत्र में दुर्गावशेषों की अनेक उपलब्धियाँ हुई हैं। यहां पर अनेक दुर्ग एवं गढ़ियाँ थीं।

छोटी-छोटी गढ़ियां नरदहा और हुमायूँ की छावनी आदि स्थलों में थीं। कुछ दुर्ग अवशेष पहाड़ीखेरा के आस-पास भी उपलब्ध होते हैं। अंत में हम यह कह सकते है कि कालिंजर परिक्षेत्र दुर्ग अवशेषों से भरा पड़ा है।

4.प्रासादीय अवशेष-

कालिंजर परिक्षेत्र में कुलीन वर्ग के लिए अनेक राजप्रासाद उपलब्ध हुए हैं। काल की दृष्टि से ये राजप्रासाद चंदेलयुग से लेकर 18 वीं शताब्दी तक के प्रतीत होते हैं। कालिंजर बस्ती में दुर्ग के सन्निकट राठौर महल हैं। रचनाशैली की दृष्टि से इसे मुगल कालीन वास्तुशिल्प की संज्ञा दी जा सकती हैं राजप्रासादों के बाहरी भाग में विशिष्ट कला शैली के दर्शन होते हैं। ठीक इसी के सामने एक महल हैं । जिसे यहां के लोग रनिवास के नाम से पुकारते हैं।

कालिंजर बस्ती में ही थोड़ी दूर पर मिश्रों (पंडितों) के कई महल उपलब्ध हुये है। किसी जमाने में ये यहां के जागीरदार थे। ये महल मुगल एवं बुन्देली वास्तुशिल्प के अच्छे उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। कालिंजर बस्ती में ही दो अन्य महल हैं, एक में तुफैल का निवास स्थान था तथा दूसरे में राजवैद्य निवास करते थे। कालिंजर दुर्ग के ऊपर सातवां द्वार पार करते ही हमें चौबे महल के दर्शन होते हैं। यह महल मानधाता चौबे से लेकर रामकिशन चौबे तक उन्हीं के अधिकार में रहा । वास्तुशिल्प की दृष्टि से यह भी बुन्देली और मुगल शैली का समिश्रण है। कालिंजर दुर्ग में ही राजा अमान सिंह का महल है। यह महल अत्यन्त सुन्दर है।राजा अमान सिंह बहुत ही दयालु ,शिष्ट और दानवीर थें। इनके संदर्भ में कुछ उक्तियां प्रसिद्ध है-

रजत पहार घनसार मालती के हार।
छीर पारावार गंगधार सो धराधर सो।।
सत्य सो सतोगुण सो शारदा सो शंकर से।
शंख सुक्रन सो सुधा सो सुरतरू सो।।
भनत पराग कामधेनु सो कुमोदिनि सो।
कुंजकुंद फूल सो पुनीति पुष्प फर सो।।
कलि में अमान सिंह करण अवतार जानो।
जाको जस छाजत छबीलों छपाकर सो।।
''कहॉ गये राजा अमान, रोवें वन की चिरइयाँ।।''

-पराग कवि (प्रचलित बुन्देली लोकगीत)

कालिंजर परिक्षेत्र में ही नहीं अपितु पूरे उत्तर प्रदेश में अधिकतर यह लोकगीत लोगों के मुंह से सुने जाते हैं। खास तौर से यह पंक्ति सभी के द्वारा सुनी जा सकती है।

कालिंजर दुर्ग में ही अन्य आवासीय महल थे, जिसमें शासक वर्ग रहा करता था। वे सब अब ध्वस्त हो चुके है। इसके अतिरिक्त यहां जुझैतियों की बस्ती के अवशेष भी प्राप्त हुए है। चन्देल शासन में जुझौतियां ब्राह्मणों का अत्यन्त सम्मान था। कालिंजर के अतिरिक्त बहादुरपुर के सन्निकट हुमायूँ की छावनी नामक स्थान में महलों के पुरावशेष उपलब्ध हुए हैं। रसिन और मड़फा में उपलब्ध राजप्रासाद पूरी तरह ध्वस्त हो चुके हैं। इसलिए वास्तुशिल्प की दृष्टि से इन पर कोई विचार नहीं किया जा सकता है। कुछ आवासीय महल फतेहगंज में वीरगढ़ दुर्ग के ऊपर उपलब्ध हुए हैं, मगर ध्वस्त होने के कारण कोई विचार नहीं किया जा सकता।

पाथर कद्दार में पथरीगढ़ के सन्निकट कुछ महलों के अवशेष उपलब्ध होते है। इन महलों में मुगल व बुन्देली वास्तुशिल्प का समिश्रण कहा जा सकता है। इसके बाहरी तथा द्वार के ऊपरी भाग में बहुत ही सुन्दर चित्रकारी है। ड्योढ़ी के अन्दर वर्गाकार आंगन है और उसके चारो ओर विभिन्न प्रकार के कच्छ बने हुए है। इन महलों में चूने की छपाई तथा निर्माण में पत्थरों का प्रयोग किया गया है। कही-कहीं पर पतली ईटें भी दृष्टिगोचर होती है। पाथर कद्दार में ही अन्य महलों के अवशेष भी प्राप्त होते है। आवागमन के साधनों के अभाव के केवल निजी साधनों से ही कालिंजर से यहां पहुंचा जा सकता है। इतिहासकार के0 सी0 मिश्रा ने आवासीय वास्तुशिल्प पर काफी प्रकाश डाला है। निर्माण शैली में वराहमिहिर द्वारा रचित बृहदसंहिता, विश्वकर्मा द्वारा रचित विश्वकर्म प्रकाश, मयदानव द्वारा रचित मयशिल्प, मैमत काश्यप द्वारा रचित वस्तुतत्व तथा भरद्वाज द्वारा रचित वस्तुतत्व और सनतकुमार द्वारा रचित वास्तुशास्त्र का सहारा लिया जाता था।[47]

कालान्तर में जब इस क्षेत्र में मुसलमानों और तुर्कों का आक्रमण हुआ, उसके पश्चात ही वस्तु शिल्प में परिवर्तन आया। जब यह क्षेत्र बुन्देलों के अधिकार में आ गया तो यहां का वस्तुशिल्प मिश्रित वस्तुशिल्प के नाम विख्यात हुआ। इसमें मुगल और बुन्देली शैली का समिश्रण झलकता है।

5. स्मारकीय अवशेष -

कालिंजर परिक्षेत्र में राजप्रासादों और दुर्गों के अतिरिक्त अन्य स्मारकीय अवशेष उपलब्ध होते हैं। जिनका सम्बन्ध ऐतिहासिक घटनाओं से जुड़ा है। कालिंजर दुर्ग के ऊपर जौहरा नामक स्थल उपलब्ध हुआ है जिसके संदर्भ में यह जनश्रुति है कि जब कोई राजा पराजित हो जाता था। तब उसकी रानियाँ इस स्थल पर जौहर व्रत किया करती थीं। कालिंजर दुर्ग के सातवें द्वार के सन्निकट युद्ध में मरे सैनिकों की कब्रें बनी हुई हैं और नीलकण्ठ मंदिर के सन्निकट एक मजार बनी हुई है। प्राप्त कब्रों और मजारों के विषय में कोई अभिलेख एवं ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए इनके विषय में कुछ भी नीश्चित नहीं कहा जा सकता है। दुर्ग के ऊपर ही एक अंग्रेज की मजार है। मजार में वाऊचोप नाम लिखा है। इस अंग्रेज के बारे में यह कहा जाता है कि इसने यहाँ की आदिवासी जाति की महिलाओं के साथ छेड़खानी की थी। इसलिए

खैरवार जाति के आदिवासियों ने ही इसकी हत्या कर दी थी।[48] वेंकटेश्वर मंदिर के समीप एक मस्जिद है जो कुतुबुद्दीन ऐवक, के समय की प्रतीत होती है। कालिंजर दुर्ग के नीचे राठौर महल के समीप कुछ कब्रें बनी हुई हैं, उसके सन्निकट अन्य मस्जिद जैसी इमारतें हैं। कालिंजरी पहाड़ी के निकट अनगिनत कब्रें हैं जो महमूद गजनबी और शेरशाह सूरी के काल की हैं। यहीं से थोड़ी दूर चलने पर बधेलावारी मार्ग में शेरशाह सूरी की मजार है। इसकी मृत्यु कालिंजर दुर्ग में सन् 1545 में हुई थी। कुछ मृत्यु स्मारक हुमायूँ की छावनी के नजदीक हैं। इसके अतिरिक्त नरदहा में पत्थर के कोल्हू उपलब्ध हुए हैं। इनके विषय में कहा जाता है कि चन्देल काल और उसके बाद तक मृत्युदण्ड की यह प्रथा थी कि जीवित व्यक्तियों को कोल्हुओं में पेर कर मृत्यु दण्ड दिया जाता था। कुछ मृत्यु स्मारक पाथर कद्दार में प्राप्त हुए हैं। यह स्मारक रक्तदंतिका देवी मंदिर के निकट है। यह मृत्यु समारक अत्यन्त उच्चकोटि के हैं। यह यहां के हिन्दू राजवंशों के है। किसी-किसी में शिव प्रतिमा भी है। यहीं से थोड़ी दूर चलने पर एक वैश्या की बहुत सुन्दर मजार उपलब्ध हुई है। यदि इसकी समतुलना हैदराबाद की चार मीनार से की जाये तो कोई अत्युक्ति न होगी। कुछ मृत्यु स्मारक मड़फा और रसिन में भी उपलब्ध हुए हैं। जो वास्तुशिल्प की दृष्टि से उच्चकोटि के नहीं हैं किन्तु गुढ़ा के सन्निकट नौगवां नामक ग्राम में एक संत कबीर की गद्दी प्राप्त हुई है। इसके निकट बने हुए मृत्यु स्मारक अत्यन्त सुन्दर और वास्तुशिल्प के उदाहरण हैं। यह मुगलशैली के प्रतीत होते हैं। पुरावशेष की दृष्टि से इन्हें महत्वपूर्ण कहा जा सकता है।

6. धर्म स्थल-

कालिंजर परिक्षेत्र में अनेक स्थलों पर धार्मिक स्थल उपलब्ध होते है। यह धार्मिक स्थल गुप्त युग से लेकर बुन्देला शासकों के समय तक के हैं। इन धार्मिक स्थलों का सम्बन्ध हिन्दू धर्म के विविध मतों इस्लाम धर्म एवं जैन धर्म से सम्बन्धित हैं। सबसे प्राचीन धार्मिक स्थल कालिंजर दुर्ग में ही उपलब्ध होते हैं।यहां नीलकण्ठ महादेव का मंदिर दुर्ग के ऊपर है। इसके संदर्भ में स्थानीय लोगों का कथन है कि चंदेलों के युग में यह सात मंजिला था। इसका मण्डप विविध मूर्तियों से अलंकृत है। मदिंर के अन्दर शिव और पार्वती की प्रतिमा हैं ये प्रतिमायें नीले पत्थर की हैं। इनका स्वरूप मूर्ति एवं लिंग दोनों का ही है। मन्दिर परिसर के बाहर अनेक मूर्तियां मिलती हैं। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध मूर्ति काल भैरव की है। जिसमें नरमुण्ड माला और 18 भुजायें है।

दुर्ग के ऊपर ही राजा अमान सिंह के महल के समीप वेंकटेश्वर मन्दिर के अवशेष मिलते हैं, दुर्ग के ऊपर अनेक धार्मिक स्थल थे जो अब नष्ट हो चुके हैं। बृद्धक क्षेत्र और कोटितीर्थ तालाब का भी धार्मिक महत्व था। यहीं पर सहस्त्रलिंगी महादेव तथा अन्य मूर्तियां उपलब्ध होती हैं। दुर्ग के नीचे अनन्तेश्वर महादेव का मंदिर बुन्देलों के युग का है। यहीं पर गोपाल तालाब के सन्निकट एक विष्णु मंदिर है। कालिंजर बस्ती में हिम्मत बहादुर गोसाई के समय का गौरइया मंदिर भी उपलब्ध होता है। इसका निर्माण बुन्देली

वास्तुशिल्प के अनुसार हुआ है।कालिंजर दुर्ग के नीचे सुरसरि गंगा नामक धार्मिक स्थल है। यहां अनेक मूर्तियां प्राप्त होती है।शेषशायी विष्णु की मूर्ति दर्शनीय है तथा अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियां यहीं है। इसी के थोड़ी दूर पर सिद्धों के मठ हैं। यहां योगपंथी तप किया करते थे।

कालिंजर से बघेलावारी मार्ग पर नरदहा और सिधौरा में देवी मंदिर एवं गणेश मंदिर के अवशेष उपलब्ध हुए है। ये अवशेष पंचम पुर बांध के सन्निकट हैं। यहां की गणेश प्रतिमा अत्यन्त विशाल एवं कलात्मक है। यहीं से थोड़ी दूर नौ गवां में कबीर गद्दी के नाम से एक धार्मिक स्थल है। जहां कबीरपंथ के लोग अपनी साधना करते है। इसी स्थान से थोड़ी दूर पर गुढ़ा नामक स्थान पर हनुमान जी का एक मंदिर है, जिसकी मूर्ति चंदेल कालीन है। मंदिर का निर्माण बाद का मालूम पड़ता है। कालिंजर बस्ती में ही रींवा फाटक के सन्निकट एक हनुमान मंदिर उपलब्ध होता है तथा यहीं पर गणेश आदि की प्रतीमायें भी है।

पाथर कद्दार में रक्तदंतिका देवी का मंदिर है, और यहीं पर दो विष्णु मंदिर भी उपलब्ध होते हैं। ये मंदिर बुन्देला शासन काल के प्रतीत होते हैं। किन्तु रक्तदंतिका की मूर्ति चंदेल कालीन है। यह क्षेत्र चौबों की जागीर में शामिल था। यहीं से कुछ दूरी पर फतेहगंज में वीरगढ़ की पहाड़ी पर एक देवी मंदिर प्राप्त होता है। यह मंदिर बघेल राजा व्याध्रदेव और उसके उत्तराधिकारियों द्वारा निर्मित प्रतीत होता है। इसी के सन्निकट बान गंगा मार्ग पर बिलहरिया मठ मंदिर[49] के अवशेष उपलब्ध होते हैं। मंदिर में मुख्य प्रतिमा (विष्णु मूर्ति) इस समय नहीं है। यह मन्दिर ध्वस्त हो रहा है। शैली की दृष्टि से यह चंदेल कालीन वास्तुशिल्प का उत्कृष्ट नमूना है। मंदिर देखने में खजुराहो के मंदिर जैसा ही प्रतीत होता है। यहीं से थोड़ी दूर पर शिव और हनुमान मंदिर के भग्नावशेष मिलते हैं तथा बानगंगा के निकट भी अनेक मंदिर प्राप्त होते हैं।

मड़फा दुर्ग के ऊपर भगवान शिव का एक चन्देलकालीन मंदिर उपलब्ध होता है जिसकी मूर्ति कालिंजर के कालभैरव जैसी प्रतीत होती है। मंदिर से थोड़ी दूर चलने पर दो जैन मन्दिरों के अवशेष प्राप्त होते है। इन मंदिरों में अब कोई मूर्तियाँ उपलब्ध नहीं हैं। थोड़ी दूर चलने पर जैन मंदिरों के भग्नावशेष उपलब्ध होते हैं जिन्हें स्थानीय लोग बारादरी के नाम से पुकारते हैं। वास्तुशिल्प की दृष्टि से इनका निर्माण शिल्प चंदेलकालीन है। यहीं पर एक धार्मिक स्थल गौरी शंकर गुफा नाम से उपलब्ध होता है, जहां अनेक देवताओं की मूतियां हैं। इसी से कुछ नीचे उतरने पर साधू संतों की तप स्थली भी है।

मड़फा दुर्ग से थोड़ी दूरी पर रौलीगोड़ा नामक एक स्थल हैं, यहां पर एक चंदेल कालीन मंदिर उपलब्ध हुआ है, जो देखने में खजुराहों के मंदिरों जैसा प्रतीत होता है किन्तु यह जीर्ण-शीर्ण स्थिति में है। यहीं से थोड़ी दूर पर पवर्त श्रेणी में एक देवी का मंदिर भी है, जो चन्देल काल का प्रतीत होता है।

थोड़ी दूर रसिन नामक एक ऐतिहासिक स्थल है। इसकी एक पहाड़ी पर चन्द्रामाहेश्वरी का मंदिर है। यह मंदिर भी चन्देलकालीन वास्तुशिल्प का उत्कृष्ट नमूना है इसके गर्भगृह से मुख्य मूर्ति गायब है। इसी

पर्वत के एक कोने पर रतननाथ नामक यादव का एक धार्मिक स्थल है। पर्वत के नीचे तालाब के किनारे चंदेल कालीन मंदिर उपलब्ध होता है, यह देवी मंदिर प्रतीत होता है। इस स्थल में अनेक मूर्तियाँ देवी-देवताओं से सम्बन्धित हैं । रसिन के अन्य क्षेत्रों में भी धार्मिक स्थलों के अनेक अवशेष उपलब्ध होते हैं।

धार्मिक स्थलों का दर्शन एवं धार्मिक दृष्टि से विश्लेषण करने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह क्षेत्र मुख्य रूप से शिव उपासना का केन्द्र था। उसके पश्चात देवी मंदिरों का बाहुल्य प्रतीत होता है। विष्णु मंदिर और गणेश मंदिर भी उपलब्ध होते हैं। किन्तु इनकी संख्या बहुत अधिक प्रतीत नहीं होती। इन मंदिरों में नागों तथा अन्य पशुओं,वाराह इत्यादि की मूर्तियां प्राप्त होती हैं। जिससे इस क्षेत्र की धार्मिक विविधता का बोध होता है। निराकार और नाग पंथियों ,कबीरों तथा सिद्धों की इमारतें जो इस क्षेत्र में उपलब्ध हुई हैं उन्हें धार्मिक,ऐतिहासिक साक्ष्यों के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। इस्लाम धर्म से सम्बन्धित जो मस्जिदें यहां उपलब्ध होती हैं। उनसे यह प्रतीत होता है कि मुस्लिम आक्रमणकारियों ने जब कालिंजर परिक्षेत्र में आक्रमण किया। उस समय उन्होंने हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं पर आघात पहुंचाया और अपने धर्म का प्रचार-प्रसार किया। यह क्रम 9वीं शताब्दी से लेकर 17वीं शताब्दी तक किसी न किसी रूप में चलता रहा।

7- मूर्ति अवशेष-

कालिंजर परिक्षेत्र में गुप्त काल से लेकर बुन्देला शासकों के समय तक की मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। सुप्रसिद्ध मूर्तियाँ, गुप्तयुग और चन्देल युग की हैं, क्योंकि चन्देलयुगीन मूर्तियों में मूर्तिशिल्प बहुत ही उच्चकोटि का है। मुख्य प्रतिमायें शिव,गणेश शक्ति,हनुमान, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, नाग ,यक्ष, वाराह की उपलब्ध होती है।[50] यह सभी प्रतिमायें हिन्दू धर्म के विविध शाखाओं की हैं। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में जैन धर्म से सम्बन्धित प्रतिमायें भी विविध तीर्थकारों की प्राप्त होती हैं।ये प्रतिमायें भी चन्देल कालीन हैं, और वास्तुशिल्प की दृष्टि से उच्चकोटि की भी हैं। कालिंजर दुर्ग में नीलकण्ठ महादेव सहस्रलिंगी शिव, पंचमुखी शिव, काल भैरव तथा मिढ़की भैरव की प्रतिमायें उच्चकोटि की कलाकृति हैं।इसी प्रकार सुरसरि गंगा में प्राप्त शेषशायी विष्णु की मूर्ति वास्तुशिल्प का उत्कृष्ट उदाहरण प्रतीत होती हैं। कालिंजर दुर्ग में ही नागों, यक्ष-यक्षणियों ,वाराह तथा नन्दीश्वर की भी मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। कुछ मिथुन मर्तियाँ भी खजुराहों शैली की प्राप्त होती हैं।

सिधौरा के निकट गणेश जी की बहुत सुन्दर प्रतिमा उपलब्ध हुई है। इसी प्रकार रसिन में अनेक मूर्तियाँ सत्ता-सत्ती की उपलब्ध होती हैं। इसमें सूर्य-चन्द्र, स्त्री-पुरूष का जोड़ा और आशिर्वाद का हांथ अंकित है। इसी प्रकार मड़फा रौली गोंड़ा, बिलहरिया मठ की मूर्तियँ भी कलात्मक दृष्टि से उच्चकोटि की हैं कुछ मूतियाँ कालिंजर में बागे नदी के तट पर उपलब्ध होती हैं। लोगों का विचार है कि यहां नदी तट पर एक मंदिर था, जो नष्ट हो गया है। बुन्देला शासकों के समय की मूर्तियाँ अधिकांशतः अष्टधातु एवं

पीतल आदि की हैं। जो पाथर कद्दार एवं कालिंजर के मंदिरों में देखी जा सकती हैं। नरदहा में बलखण्डेश्वर महावीर की एक विशालकाय प्रतिमा प्राप्त हुई है। यह प्रतिमा अत्यन्त सुन्दर और दर्शनीय है। यहां की पुरातात्विक सामग्री मूर्ति साक्ष्य के रूप में चारो ओर फैली हैं किन्तु सरंक्षित नहीं है।

8- जलाशय-

कालिंजर क्षेत्र में उपलब्ध जलाशय ऐतिहासिक साक्ष्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इसमें कुछ जलाशय महाभारत काल के हैं। महाभारत कालीन जलाशयों में मृगधारा, कोटितीर्थ तथा बृद्धक क्षेत्र के जलाशय अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इनका उल्लेख भागवत पुराण और महाभारत में हैं। इसके अतिरिक्त पाण्डव कुण्ड, पाताल गंगा, मझार ताल, शनीचरी तलइया, रामकटोरा , ताल कालिंजर दुर्ग के प्रसिद्ध जलाशय हैं। दुर्ग में ही खम्भौर ताल है, जो रामायण कालीन हैं। इसी स्थान पर महर्षि सुतीक्ष्ण का आश्रम था। जल मानव की सर्वाधिक आवश्यकता की वस्तु है, इसलिए आवासीय बस्तियाँ बनाने के पहले जलाशयों का निर्माण करना आवश्यक होता था।

दुर्ग के नीचे प्राचीन जलाशयों में सुरसरि गंगा, बेला ताल, गोपाल ताल आदि महत्वपूर्ण जलाशय हैं। इसके अतिरिक्त अन्य बावडी और बीहड उपलब्ध होते हैं। कालिंजर से कुछ ही दूरी पर बृहस्पति कुण्ड नामक स्थल हैं। यहां पर प्राकृतिक जलाशय हैं और यह स्थल रामायण कालीन है। हुमायूं की छावनी, सिधौरा, फतेहगंज में अनेक जलाशय हैं जिनमें सकरो जल प्रपात अत्यन्त प्राचीन है। इसके अतिरिक्त मगरमुहा में शैलचित्र के समीप एक जलाशय है इसी स्थान पर वीरगढ़ की पहाड़ी पर देवी मंदिर के समीप एक तालाब उपलब्ध हुआ है। यहीं से कुछ दूर चित्रकूट मार्ग पर बान गंगा नामक जलाशय उपलब्ध होता है यह जलाशय कुण्ड के रूप में है।

फतेहगंज से कुछ दूरी पर पाथर कद्दार रियासत अनेक जलाशय स्थित हैं। एक तालाब रक्तदंतिका मंदिर के समीप है। इस तालाब के किनारे मृत राजाओं को स्मारक बने हुए हैं। यहां से कुछ दूरी पर दो प्राकृतिक झीलें उपलब्ध होती हैं और बीच में एक बीहड भी है तथा कुछ जलाशय दुर्ग अवशेषों के समीप भी हैं।

मड़फा दुर्ग में भी अनेक जलाशय हैं। इसमें एक जलाशय कालिंजर दुर्ग में उपलब्ध स्वर्गारोहण तालाब की भांति हैं । दो अन्य तालाब जैन मंदिरों के समीप प्राप्त हुए है। जलाशयों के अतिरिक्त अनेक बावडियाँ भी हैं जो दुर्गों,पर्वतों, पर अनेक स्थलों में बनी हुई हैं।

प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थल रसिन में दुर्ग के ऊपर जहां चन्द्रामाहेश्वरी देवी का मंदिर है। उसके समीप एक जलाशय है। यह जलाशय तालाब के रूप में हैं जो अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह चन्देल कालीन सरोवर है। रसिन बस्ती में एक मन्दिर के समीप एक विशाल तालाब है शायद यह भी चन्देलकालीन है। इसी के समीप एक चन्देलकालीन बीहड़ भी प्राप्त होता है। सभी जलाशय एवं बीहड़

अत्यन्त प्राचीन है। रसिन के पास रौलीगोंड़ा नामक स्थान में चन्देलकालीन मंदिर के समीप एक जलाशय उपलब्ध हुआ है।

यदि ऐतिहासिक दृष्टि से जलाशयों का मूल्यांकन किया जाये तो समस्त जलाशयों का निर्माण काल रामायण काल से लेकर चन्देल युग तथा उसके बाद का प्रतीत होता है। जलाशयों की निर्माण शैली का उल्लेख अग्निपुराण,बृहद्संहिता, विश्वकर्मा प्रकाश आदि ग्रंथों में विस्तार से है। जो जलाशय सल्तनत काल, मुगलकाल तथा बुन्देलों के शासन के समय के हैं उनकी निर्माण शैली मिश्रित शैली है। इस विषय में के0 सी0 मिश्रा का यह दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है "मदनवर्मा ने जलाशयों की रचना के कारण जिस लोकप्रियता का संग्रह किया वह अन्यों को दुर्लभ रहा।" उसी के युग का बना अजयगढ़ का सुविशाल पोखरा,कृत्रिम झील तथा कालिंजर का रमणीय जलाशय सभी बड़े ही महत्व के हैं। इन जलाशयों की धार्मिक महत्ता जो आज प्राप्त होती है वह प्राचीन समय से ही आरम्भ है।[51]

कालिंजर परिक्षेत्र में उपलब्ध सभी जलाशय विन्ध्य क्षेत्र की पर्वतीय भूमि पर बने हुए हैं जिन्हे ढालदार स्थलों पर दीवार या स्तम्भों के सहारे निर्मित किया गया है। अनेक जलाशयों में जल स्तर तक सोपान निर्मित हैं। इसी प्रकार बीहड़ों में जल स्तर तक पहुंचने के लिए सीढ़ियाँ निर्मित की गई हैं। उस समय जो भी शैली उपलब्ध थी उन्हीं शैलियों का आश्रम ग्रहण कर तद्युगीन वास्तुकारों ने कलात्मक ढंग से इनका निर्माण किया था।

9. अभिलेख -

कालिंजर के ऐतिहासिक साक्ष्यों के रूप में प्राप्त अभिलेखों का महत्वपूर्ण स्थान है। जैसे ही हम नीलकण्ठ मंदिर में प्रवेश करते हैं। वहीं एक स्तम्भ पर मदन वर्मा के समय का एक अभिलेख प्राप्त होता है। यह अभिलेख (विक्रमी संवत 1186) सन् 1129 ई0 का है। इस अभिलेख में महाप्रतिहार संग्राम सिंह तथा महानचनी पद्मावती का नाम अंकित है।[52] कालिंजर में ही मदन वर्मा का एक और अभिलेख मिला है। इसमें कार्तिक सुदी अष्टमी विक्रमी संवत् 1188 अंकित है। इसमें रूपकार लाहण तथा लक्ष्मीधर के नाम अंकित है।[53] कालिंजर में एक और अभिलेख विक्रमी संवत् 1258 तद्नुसार सन् 1201 ई0 का है। इस अभिलेख में परमार्दिदेव को"दर्शाणाधिनाथ" के नाम से सम्बोधित किया गया है।[54] कालिंजर में ही एक अभिलेख फारसी में उपलब्ध हुआ है, जिसमें हिजरी सम्वत 1084 अंकित है। तद्नुसार यह अभिलेख 1673 ई0 का है। इस अभिलेख में मोहम्मद मुराद द्वारा द्वार को मजबूत बनाने का जिक्र है।[55]

विक्रमी संवत् 1154 का एक शिलालेख कालिंजर में उपलब्ध हुआ है, जो कीर्तिवर्मन के समय का है। जिससे यह प्रतीत होता है कि उसने शासन को समृद्धशाली बनाया और उसका विस्तार किया। उसके पश्चात उसके उत्तराधिकारी सुलक्षन वर्मा ने शासन किया।[56] कालिंजर में एक और अभिलेख प्राप्त हुआ है जिससे यह जानकारी मिलती है कि जयवर्मन ने शासन सत्ता से घबराकर अपने उत्तराधिकारी के लिए गद्दी

छोड़ दी। एक महत्वपूर्ण अभिलेख कालिंजर में ही उपलब्ध हुआ है जो मदन वर्मा के समय का है। उसमें इस बात का वर्णन है कि उसने मालवा नरेश पर विजय प्राप्त की थी।उसी के उपलक्ष्य में सम्वत् 1134 में भेलस्वामिनी (विदिशा) में कुछ जमीन ब्राह्मणों को दान में दी थी। इस अभिलेख में यह भी वर्णन है कि उसने गुर्जर नरेश को ठीक उसी तरह परास्त किया जैसे भगवान श्री कृष्ण ने कंस का विनाश किया।[57] कालिंजर में दो स्तम्भ लेख मिले हैं। यह नीलकण्ठ मंदिर के समीप हैं।[58] इसमें एक स्तम्भ लेख विक्रमी संवत् 1188 का है। यह नीलकण्ठ मंदिर के बांई ओर बैल की मूर्ति में है। इससे यह सद्धि होता है कि मूर्ति का निर्माण नीलकण्ठ मंदिर के साथ हुआ था। इसी स्थान पर एक शिलालेख विक्रमी संवत् 1192 का है। यह एक गुफा में है जिसकों खुदवाने वाला एक भरद्वाज ब्राह्मण था। इसमें विक्रमी संवत् 1194 अंकित है। एक अभिलेख कालिंजर में ही विक्रमी संवत् 1240 का प्राप्त हुआ है।[69] इस अभिलेख का आशय यह है कि सम्पूर्ण कालिंजर परिक्षेत्र का राजा परमार्दिदेव था तथा इसका सबसे बड़ा शत्रु पृथ्वीराज तृतीय था। इसने संवत् 1178-1192 तक राज्य किया।[60] कालिंजर में एक शिलालेख त्रैलोक्य वर्मन के समय का उपलब्ध हुआ है। यह सन् 1206 का है। इसमें उसे"कालिंजराधिपति" के नाम से सम्बोधित किया गया है।[61]

अभिलेखीय साक्ष्यों के अनुसार एक अभिलेख सीता सेज में उपलब्ध हुआ है,दूसरा अभिलेख पाताल गंगा में, तीसरा अभिलेख मिढ़की भैरव स्थान में, चौथा अभिलेख अंग्रेजों के समय का वाऊचोप की मजार पर है। इनके अतिरिक्त मड़फा, रसिन, फतेहगंज, वीरगढ़, पाथर कद्दार आदि स्थानों में अनेक अभिलेख प्राप्त हुए हैं, जिनमें से कुछ विध्वंस हो गये हैं जिन्हें पढ़ा जाना मुश्किल है। कुछ अभिलेख बिलहरिया मठ, रौलीगोंड़ा आदि स्थानों में भी प्राप्त हुए हैं। अभिलेखीय साक्ष्यों से कालिंजर महत्वपूर्ण स्थल सिद्ध होता है और इसका धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व उजागर होता है। इन्हीं अभिलेखों द्वारा ही कई राजनीतिक घटनाओं का आभास होता है तथा उनकी महानता, दानवीरता, धार्मिकता, सहनशीलता ,राज्य विस्तार और कर नीति का ज्ञान इन्हीं अभिलेखों द्वारा हो जाता है।

10. मुद्रायें -

कालिंजर परिक्षेत्र के ऐतिहासिक साक्ष्यों में मुद्राओं का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है।राजनीतिक दृष्टि से उत्थान-पतन देखने वाले इस क्षेत्र में अनेक शासकों ने राज्य किया है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि समय-समय पर उन शासकों की मुद्रायें भी यहां प्रचलित रहीं हैं। प्रमुख रूप से इस क्षेत्र में कलचुरियों और चन्देलों के ही सिक्के उपलब्ध होते हैं। इन सिक्कों में ब्राह्मीलिपि में त्रिपुरी शब्द अंकित है। सवंत् की जगह कुछ भी अंकित नहीं हैं। इन सिक्कों में एक ओर धन (+), चन्द्र एवं चैत्य के आकार अंकित है। इन्हीं चिन्हों से शक्ति, नर्मदा तथा धर्म का आभास होता है। कलचुरि शासन काल के कुछ सिक्के ग्यारहवीं शताब्दी के प्राप्त होते हैं। इन सिक्कों में कलचुरि वंश के 12 राजाओं के नाम अंकित हैं। यह देखनें में अत्यन्त सुन्दर है। सिक्कों में एक तरफ चतुर्भुजी देवी की मूर्ति है जो कदाचित लक्ष्मी या दुर्गा की हो सकती

है। कलचुरि युग के सिक्के स्वर्ण धातु से निर्मित हैं बाद में इन सिक्कों की नकल कन्नौज के गहड़वारों व दिल्ली के तोमरों ने की। कालिंजर में यह सिक्के अत्यन्त प्राचीन अवशेषों के रूप में यहां के निवासियों को प्राप्त हुए हैं।

कालिंजर में प्राप्त दूसरे सिक्के चन्देल युगीन हैं। ये कलचुरि नरेश गांगेय देव के सिक्कों की नकल है। इनमें एक ओर राजा का नाम तथा दूसरी ओर हनुमान की मूर्ति है।यह सिक्के सोने,चाँदी और ताँबे से निर्मित थे। चन्देल वंश के 13 नरेशों के सिक्के उपलब्ध होते हैं किन्तु अधिकांश सिक्के 13वें नरेश कीर्तिवर्मन देव के सन् 1245 ई0 के हैं और कुछ सिक्के 20वें नरेश वीरवर्मन के सन् 1287 ई0 के हैं।

कालिंजर पर कुछ दिनों तक सुल्तानों और मुगलों का अधिकार रहा। इस क्षेत्र में जो सिक्के उपलब्ध हुए हैं, वह सन् 1311 ई0 से लेकर 1553 ई0 तक के हैं। इनमें अरबी,फारसी से हिजरी संवत् और बादशाह का नाम अंकित हैं । यह सिक्के सोने और चांदी के प्राप्त हुए हैं।[62]

चन्देल युग की मुद्राओं के सन्दर्भ में इतिहासकारों का यह मत है कि ये कलचुरि नरेश गांगेय देव के सिक्कों की प्रतिकृति हैं। यह महमूद गजनवी का समकालीन था। सुप्रसिद्ध इतिहासकार और अन्वेषक जनरल कनिंघम ने यह कहा है कि चौदहवीं सदी के प्रारम्भ तक अनेक प्रकार के सिक्के इस क्षेत्र में प्रचलन में रहे। उसी शैली पर पार्वती छाप के सिक्के महोबा के चन्देलों द्वारा ग्रहण किये गये।[63] चन्देलों की कुछ मुद्रायें पहले से ही यहां प्रचलित थीं किन्तु जैजाकभुक्ति की जो मुद्रायें प्राप्त हुई हैं। वे सन् 1060 ई0 की हैं। अधिकांशतः यह गांगेय देव शैली की हैं स्वर्ण मुद्राओं का वजन 62 ग्रेन था। चन्देलकालीन सिक्कों की संख्या बहुत कम है। सिक्कों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि मुद्रा ढलाई का कार्य बहुत उत्तम था। धातु कला की दृष्टि से मुद्राओं में आकर्षण था तथा इनका प्रचलन सम्पूर्ण चंदेल शासन क्षेत्र में था। मुद्रा निर्गमन का एक ही उद्देश्य था कि व्यवसाय की समृद्धि की जाये तथा अदल-बदल कर व्यवहारिक बाधाओं को दूर किया जा सके। इस प्रकार हम देखते है कि मुद्राओं से हमें उस समय के प्रत्येक पहलू को समझने में आसानी होती है।

11. उपलब्ध अस्त्र-शास्त्र -

कालिंजर विभिन्न युगों से गुजरा है तथा इसके ग्रामीण अंचलों में कोल,भील,गौण, बैगा आदि आदिवासी निवास करते थें।भगवान राम जब वनवासी रूप में यहाँ 12 वर्षो के लिए निवास करने के लिए आय उस समय यहां के लोग अस्त्र-शस्त्रों के रूप में पत्थरों के टुकड़े ही प्रयोग में लाते थे और कुछ समय पश्चात ही यह अपनी रक्षा के लिए तीर-कमान का प्रयोग करने लगे थे। महाभारत युग में धातु निर्मित अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग होने लगा था। मल्ल युद्ध में गदाओं का प्रयोग होता था। फिर जब चतुरंगणी सेना का निर्माण हुआ, तो विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करने लगे थे। कालिंजर में जब महमूद गजनवी का आक्रमण हुआ उसके पहले यहां आग्नेय अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग नहीं होता था। इस क्षेत्र में तुर्को के

आगमन के पश्चात ही तोपों आदि का प्रयोग होने लगा। बुन्देलों के शासन काल तक अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र यहां प्रयुक्त होते थे। इनमें से कुछ अस्त्र-शस्त्र कालिंजर निवासी श्री श्याम बिहारी वैद्य को प्राप्त हुए हैं और कुछ अस्त्र-शस्त्र वहां के जागीदार तुफैल के पास भी उपलब्ध है। ये अस्त्र-शस्त्र निम्नलिखित हैं-

तोड़ादार बन्दूक, पिस्तौल,रायफल, शेरदहा, तमंचा, गुराब, खुदकुल, जिरह चिलता, चार आइना, जिरह पायजामा, दस्ताना, पेटी, बख्तर, सैफ,तलवार, तेगा, पेराकब्ज़, कटार, बिछुआ, कत्ता, खाडा, कारबैन, घोड़े की पारवरी, बरछी, तोप, सांग, बान, सूजा, पट्टा, बघनख, कुलंग, मारू, घन्नाल, हांथी की पाखरी, चक्कर, गुप्ती, गुलेल, तीर-कमान, गुजे, तवल, सिप्पा।

तलवार के सम्बन्ध में यह पंक्तियां कही जाती हैं-

दोहा- ***खरग ऑगुरन नापिये, तेराताहि मिलाय।***

बहुर सात कौ भागु, हर बांकी के ठहिराय।।[64]

उस युग में अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग शासकों द्वारा अपनी प्रजा की रक्षा के लिए किया जाता था।

12. ग्रंथीय साक्ष्य -

कालिंजर का पुरातात्विक महत्व तथा उसकी धार्मिक महिमा अति प्राचीन है। इस महिमा की वृद्धि केवल पुरावशेषों एवं धार्मिक महत्व से ही नहीं होती अपितु उन ग्रंथों से भी इस स्थान की वृद्धि होती है, जिसमें इस क्षेत्र का उल्लेख है। आर्य सभ्यता के प्राचीनतम् ग्रंथ वेद माने जाते हैं। वेदों में कालिंजर और उसके आस-पास के स्थलों का पर्याप्त विवरण प्राप्त हो जाता है। अत्रि ऋषि ,बृहस्पिति, शुक्राचार्य,अगस्त्य, गौतम ऋषि, सुतीक्ष्ण, मार्कण्डेय, सारंग, बामदेव आदि ऋषियों के आश्रम कालिंजर के आस-पास थे। इनका वर्णन वेदों के अनेक सूत्रों में हुआ है। अर्थवेद के रचयिता महाअर्थवर्ण मड़फा क्षेत्र के ही रहने वाले थे। इनकी पुत्री वाटिका का विवाह महर्षि वेदव्यास से हुआ था। वेदों में यद्यपि शुद्ध कालिंजर शब्द का प्रयोग नहीं हुआ, फिर भी उसके आस-पास के क्षेत्रों के वर्णन से इसका आभास हो जाता है।

अति प्राचीन काल में रामायण काल आता है इस युग की गौरवगाथा के प्रणेता महर्षि बाल्मीकि थे। जिनके आश्रम में सीता अपने निष्कासन के दौरान रही थीं, और लव-कुश का जन्म भी इन्हीं के आश्रम में हुआ था। बाल्मीकि रामायण में कालिंजर परिक्षेत्र का वर्णन है।[65] महाभारत युग में यह क्षेत्र चेदि राज्य के अन्तर्गत आ गया था। यहां का राजा उपरिचरि बसु था। उसकी राजधानी सुक्तिमती नगरी थी। जब पाण्डवों को अज्ञात वास दिया गया, उस समय पाण्डव इसी क्षेत्र में रहें तथा उन्होंने कालिंजर को देखा-

अत्र कालंज्अरं नाम पर्वत विश्रुतम् ।

तत्र देवह्रदे स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत्।।[66]

महाभारत के अतिरिक्त अधिकांश पुराणों में कालिंजर परिक्षेत्र का वर्णन यत्र-तत्र मिल जाता है। इन पुराणों में वायु पुराण[67], लिंग पुराण[68], कूर्म पुराण[69], वामन पुराण[70], ब्रम्हाण्ड पुराण[71], विष्णु पुराण[72],

भागवत पुराण[73], स्कन्द पुराण[74], ब्रम्ह पुराण[75], पद्म पुराण[76], अग्नि पुराण[77], गरुण पुराण[78], मत्स्य पुराण[79], देवी भागवत (उत्तरार्द्ध)[80] आदि पुराणों में कालिंजर के धार्मिक महात्म्य का वर्णन किसी न किसी रूप में मिलता है। बौद्ध ग्रन्थ, पालि जातकों में भी इसका वर्णन मिला है।

18वीं शताब्दी में अंग्रेजी शासनकाल में पुराविदों ने अनेक ऐतिहासिक सर्वेक्षण एवं अन्वेषण किये हं उनके द्वारा रचित ग्रन्थों में मुख्य रूप से इण्डियन ऐन्टीक्वेरी[81], आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट[82], जनरल ऑफ ऐशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल[83], एन्श्येन्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडीशन[84], डिक्शनरी ऑफ पालिप्रापर नेम्स[85], एन्श्येन्ट इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड वाई टालमी[86], ऐपीग्राफिया इण्डिका[87], डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया[88], जनरल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री[89], इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया[90],कौटिल्य का अर्थशास्त्र[91] आदि ग्रन्थों में कालिंजर के सन्दर्भ में व्यापक रूप से वर्णन मिल जाता है। इसके अतिरिक्त कोई भी धार्मिक ग्रन्थ और पुराण ऐसा नहीं है जिसमें कालिंजर के सन्दर्भ में कुछ न कुछ वर्णन न आया हो। इससे सिद्ध होता है कि यदि कालिंजर महत्वपूर्ण धार्मिक स्थल कला, संस्कृति का केन्द्र न होता तो उसके ग्रन्थीय साक्ष्य उपलब्ध ही न होते। इसके अतिरिक्त हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दी इण्डियन पीपुल[92], ऐज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी[93] में भी कालिंजर का उल्लेख कई स्थानों पर हुआ है। इसी प्रकार चन्दरवरदाई कृत पृथ्वीराज रासों एवं जगनिक द्वारा रचित आल्हखण्ड में भी कालिंजर का विस्तार से वर्णन है। खासतौर से पृथ्वीराजरासों में महोबे की लड़ाई खण्ड में वर्णन है। मुगलों के शासन काल में भी अनेक ग्रंथों की रचना हुई जैसे-आइने अकबरी आदि में भी कालिंजर का वर्णन है। बुन्देलखण्ड के संदर्भ में जो इतिहास लिखा गया । वह इतिहास अनेक ग्रंथों में वर्णित है। उन ग्रंथों में गोरेलाल तिवारी, केशव चन्द्र मिश्र, डॉ0 अयोध्या प्रसाद पाण्डेय, डॉ0 रमेशचन्द्र श्रीवास्तव, डॉ0 सुशील कुमार सुल्लेरे, कन्हैया लाल अग्रवाल तथा राधा कृष्ण बुन्देली आदि ने कालिंजर के विस्तृत इतिहास का वर्णन अपने प्रसिद्ध ग्रंथों में किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिंजर के संदर्भ में ग्रंथीय साक्ष्यों की उपलब्धि बहुत अधिक संख्या में हुई है।

कालिंजर परिक्षेत्र में प्राप्त सम्पूर्ण ऐतिहासिक साक्ष्यों की मौजूदगी से हम कालिंजर परिक्षेत्र के विषय में विस्तार से जानकारी हासिल कर सकते हैं। उस समय की प्राचीन वास्तुशिल्प,मूर्तिशिल्प, अत्यन्त उच्चकोटि के थे। धर्म, संस्कृति, सामाजिक-व्यवस्था, परम्परा, रीति-रिवाज, भाषा, वेश-भूषा, आवासीय व्यवस्था आदि की जानकारी होती है। इसी प्रकार कालिंजर परिक्षेत्र में शासन करने वाले शासकों एवं राजवंशों का पता चलता है तथा इसके साथ ही राजनीतिक घटनाओं का क्रमबद्ध वर्णन, आर्थिक दशा, व्यवसाय एवं साहित्यिक ग्रंथों की जानकारी होती है। अन्त में यह कह सकते है कि कालिंजर परिक्षेत्र से प्राप्त ऐतिहासिक साक्ष्यों से ही इन सभी के विषय में जानकारी मिलती है तथा बोध होता है । ऐतिहासिक साक्ष्यों का हमारे इतिहास में बहुत अधिक महत्व है। इनका जितना भी वर्णन किया जाये वह कम है। इस प्रकार हम यह सकते है कि उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री से ऊपर वर्णित विषय सामग्री मिलती है। जिससे

प्रत्येक पक्ष को जानने और समझने में सहायता मिलती है।

3. कालिंजर का भौगोलिक, प्राकृतिक और पर्यावरण की दृष्टि से महत्व -

कालिंजर परिक्षेत्र बाँदा जनपद से 56 किलोमीटर दूर है। यह बाँदा-सतना मार्ग पर स्थित है। जिस जगह कालिंजर ग्रम बसा है उसे तरहटी के नाम से जाना जाता है क्योंकि कालिंजर ग्राम निचले हिस्से पर है और कालिंजर दुर्ग ऊपरी हिस्से पर है। सन् 1977 में तरहटी ग्राम की आबादी तीन हजार दो सौ उन्नीस (3219) थी, और इसका क्षेत्रफल 452 हेक्टेयर था। इस क्षेत्र की जमीन पर्वतीय होने के कारण यहां उपज बहुत अच्छी नहीं होती है। केवल कुछ स्थलों में गेहूं और चने की खेती होती है। खेतों की सिचांई का मुख्य साधन कुएँ आदि हैं।

जिस पहाड़ी पर कालिंजर दुर्ग निर्मित है। वह पहाड़ी दक्षिणी पूर्वी विन्ध्याचल पर्वत श्रेणियों के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड में आती हैं। इसकी समुद्र तल से ऊँचाई 37 हजार 4 सौ 90 मीटर है। इसका कुल क्षेत्रफल 21 हजार 3 सौ 36 मीटर है।विन्ध्य पर्वत श्रेणी का यह भाग 1,150 मीटर चौड़ा है। इसके पूर्व में एक छोटी सी पहाड़ी है जिसे कालिंजरी पहाड़ी के नाम से पुकारा जाता है। इसकी ऊँचाई भी कालिंजर पर्वत के ही बराबर है। कालिंजर पर्वत नीचे से ऊपर की ओर है, इसकी ऊँचाई 50 से 60 मीटर तक अनुमानित है। इस पर्वत पर आसानी से नहीं चढ़ा जा सकता है।पर्वत की कुल चौड़ाई लगभग 6-8 किलोमीटर है तथा इस पर्वत में दुर्ग की दीवारें चौड़ी-चौड़ी चट्टानों से निर्मित की गई हैं। वर्तमान समय में इन दीवारों की दशा बड़ी ही जर्जर है, किन्तु चारों ओर सघन वन होने के कारण अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता है।[94]

सम्पूर्ण कालिंजर परिक्षेत्र विभिन्न प्रकार के पर्वतों से घिरा हुआ है। सम्पूर्ण पर्वत श्रेणियाँ विन्ध्यांचल पर्वत श्रेणियों का एक भाग है। इसमें मड़फा पर्वत श्रेणी, फतेहगंज पर्वत श्रेणी, पाथर कद्दार पर्वत श्रेणी, रसिन पर्वत श्रेणी, बृहस्पति कुण्ड पर्वत श्रेणी आदि शामिल हैं। ये पर्वत श्रेणियां बड़ी-बड़ी चट्टानों से युक्त हैं इनमें नाना प्रकार के झाड़ीदार वृक्ष पाये जाते हैं। इन वृक्षों में कुछ औषधीय वृक्ष भी हैं जिनकी उपयोगिता विभिन्न प्रकार औषधि बनाने में है। इन्हीं पर्वत श्रेणियों की वजह से इस क्षेत्र का मौसम तीन भागों में विभक्त हो जाता है- गर्मी,सर्दी, वर्षा।

ग्रीष्म ऋतु में यहां भीषण गर्मी पड़ती हैं। मई ,जून में ऐसी तप्त वायु चलती है कि उसके प्रभाव से कभी-कभी मनुष्यों की मृत्यु भी हो जाती है। इस वायु को गर्म हवा, लू, लपट, आदि कहते है। इसके लगने पर उपचार हेतु कच्चे आमों को भूनकर उनका रस निकाल कर रोगी को पिलाते हैं। इसी प्रकार चने की सूखी पत्तियों को भिगोकर शरीर में मालिश करते हैं। यह दोनों उपचार अत्यधिक कारगर एवं फायदे मंद हैं।

शीत ऋतु में सबेरे दो-तीन घंटों तक बहुत सर्दी होती है। कहीं-कहीं सर्दी में बर्फ भी गिरती हैं दिसम्बर और जनवरी में प्रायः सबसे अधिक सर्दी होती है।गाँव के लोग अलाव पर ही रातें बिताते हैं गरीब लोग धान या कोदों के पयार पर बिस्तर लगाते हैं।

वर्षा ऋतु आषाढ़ से क्वांर तक रहती है। इसी बीच बहुत अधिक वर्षा होती है। इस वर्षा से खेती को बहुत अधिक सहायता मिलती है यह वारिस खेती के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होती हैं। वर्षा से वातावरण स्वच्छ हो जाता है और हरे भरे जंगल का दृश्य मनमोहक हो जाता था। समीपवर्ती नदियों में कभी-कभी बाढ़ भी आ जाती है। और नालों में भी उफान आने लगता है।

कालिंजर परिक्षेत्र पर्वतीय होने के कारण यहां पर हर मौसम में आंधी चलती है। गर्मियों में ज्यादा चलती हैं। कालिंजर तथा अजयगढ़ के पहाड़ी किले और सागर आदि स्थान स्वास्थ्य के लिए अच्छे माने जाते हैं।[95]

इस क्षेत्र की प्रमुख नदी-"बागै" है। कालिंजर इस नदी के पास ही एक मील पर है। यह बृहस्पति कुण्ड से निकलती है और कालिंजर होते हुए बदौसा एवं कमासिन तक जाती है। कमासिन में यह नदी यमुना नदी में मिल जाती है। बागै नदी का जल प्रवाह दक्षिण पश्चिम से उत्तर पूर्व की ओर होता है। इसी नदी में कई छोटी-छोटी नदियां शामिल हो जाती है। जिनमें वानगंगा का प्रमुख स्थान है। इसका प्रवाह समुद्रतल से 14 हजार 325 मीटर हैं जब यह यमुना में मिल जाती है, तब उसका स्तल समुद्र तल से 10 हजार 9 सौ 82 मीटर रह जाता है। बागै नदी रसिन ओरन होते हुए प्रवाहित होती है बागै नदी का उद्‌गम स्थल कौहारी के निकट बृहस्पति कुण्ड है जो पन्ना जनपद में है।[96] पहाड़ी नदी होने के कारण इसका प्रवाह इतना तेज है कि वरसात के दिनों में थोड़ी से बाढ़ भी आने पर लोग इससे पार जाने में डरते हैं।

कालिंजर परिक्षेत्र चूंकि पर्वतीय अंचल है इसलिए यह दक्षिण-पूर्व को झुककर उत्तर-पूर्व होती हुई, कालिंजर-अजयगढ़ से होती हुई अन्य स्थलों से होकर गंगा किनारे चली गयी है।[97] यह क्षेत्र पर्वतीय होने के कारण अधिक उपजाऊ नहीं है। इसीलिए इस क्षेत्र में पर्वतीय वनस्पतियों और खनिज सम्पदा अधिक मात्रा में उपलब्ध हो जाती है। इस क्षेत्र में प्राकृतिक जल प्रपात अधिक उपलब्ध होते हैं, जिनमें से बृहस्पति कुण्ड, सकरो, मगरमुहा आदि अत्यन्त सुन्दर हैं और कोलुहा, फतेहगंज तथा बानगंगा के सन्निकट घोर जंगल है। "आइने अकबरी" में इस बात का वर्णन मिलता है। किसी समय में यहां अच्छे किस्म के हांथी पाये जाते थे।

खनिज सम्पदा की दृष्टि से यह क्षेत्र बहुत धनी है। यहां अनेक प्रकार के वृक्ष पाये जाते है। इन वृक्षों में आँवला, साल, सागौन, तेंदू, महुआ, खैर, बांस, चन्दन, लाल चंदन, आम, शरीफा, चिरौंजी, ताड़, खजूर, बबूल, बेर, सैमर, सलइया, गबदी, अमलताश, हंडुआ, ऊमर, हरद, सिघारू, कचनार, श्यामा, जामुन, चिल्ला, बेल, मुनगा, आदि वृक्ष पाये जाते हैं इनके अतिरिक्त करौंदा, करेला, रियां, चमरेल, माहुल

इंगुबा, सहजन, झरबेरी, मकुइया, मकोर रकत, थूहड़, नागफनी आदि झांड़ियां पाई जाती है। इन सभी वृक्षों से जो उपयोगी खाद्य पदार्थ उपलब्ध होता है। वह इस प्रकार है- लाल गोंद, शहद, मोम, बैचांदी, सफेद मूसली, बन सुलोचन, कत्था, मिलाई कन्द, लक्ष्मणकन्द, कुसेरा, साम्भर सींग, चमड़ा, खखूदन नौती, धवई, हड्डी ,महुआ, चिरौंजी ,आँवला, हर्र-बहेरा आदि प्राप्त होते हैं।

यहां के पर्वतों में अनेक प्रकार के पत्थर पाये जात है। चूने का पत्थर, चीप या पटिया, और मकान बनाने वाले पत्थर प्राप्त होते हैं। धातुओं में लोहा, तॉबा, बिल्लौर, हीरा, कोयला आदि पाये जाते है। इस क्षेत्र में कहीं-कहीं धाऊ या लोहे का पत्थर भी उपलब्ध होता है और कहीं-कहीं अभ्रक, तांबा, अल्मूनियम पाये जाने की सम्भावना पाई जाती है।कालिंजर के सन्निकट पहाड़ी खेरा के समीप हीरे की खदाने मिली हैं। यहां बहुत अच्छी किस्म के हीरे प्राप्त हुए हैं। इस संदर्भ में यह ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होता है कि सन् 1260 ई0 में वीरवर्मन चन्देल कालिंजर के नरेश थे। इनकी रानी दधीचि वंश की पुत्री थी। अतः तब तक वहां दधीचि वंश मौजूद था।इस क्षेत्र में दर्धीच की अस्थियों से हीरा होना मानते है। अबुल फ़ज़ल ने लिखा है- कि कालिंजर से 20 कोस पर हीरे की खान थी और कालिंजर के राजा की कीरति सिंह के पास (छः) 6 बड़े-बड़े हीरे थे। मुख्य रूप से गुजराती सेठ पुरूषोत्तम ने सन् 1746 ई0 में हीरे की खोज की थी और प्राणनाथ ने सन् 1672-1731 ई0 के मध्य इसकी खोज की थी और यही तिथि सही बताई जाती है तथा मानी भी जाती है। पुरूषोत्तम को राजा सभासिंह का समकालीन माना जाता है। राजा सभासिंह सन् 1739-1752 ई0 तक कालिंजर के राजा रहे। इनके पास भी अनेक कीमती हीरे थे।[98]

कालिंजर परिक्षेत्र में मुख्य रूप से वर्षा दक्षिणी -पश्चिमी मानसून से होती है। यहां की न्यूनतम् वर्षा 946.2 मिलीमीटर तथा अधिकतम वर्षा 1031.8 मिलीमीटर नापी गई है। सन् 1901 और सन् 1950 में सबसे अधिक वर्षा हुई थी जबकि 1919-1918 में सामान्य वर्षा रिकार्ड की गई थी। इस क्षेत्र का जो तापमान रिकार्ड किया गया वह अधिकतम 43.0 सेन्टीग्रेट एवं 28.0 सेन्टीग्रेट न्यूनतम है किन्तु कभी-कभी जब गर्मी अधिक पड़ती है तब यह बढ़कर 48.0 सेन्टीग्रेट तक हो जाता है। और शीतकाल में यह घटकर 9.6 सेन्टीग्रेट तक रह जाता है। इस तरह इस क्षेत्र का तापमान 1966 के अनुसार अधिकतम 48.6 सेन्टीग्रेट था तथा न्यूनतम 0.6 सेन्टीग्रेट 18 व 19 जनवरी 1962 में था, जो अब तक का सबसे कम तापमान था।[99]

कालिंजर क्षेत्र पूर्ण रूपेण प्राकृतिक सौन्दर्य का धनी क्षेत्र है। यहाँ पर मड़फा, रसिन,पाथर कद्दार बृहस्पति कुण्ड तथा कालिंजर आदि में पर्वत श्रेणियाँ हैं। यह पर्वत श्रेणियाँ हरे भरे वृक्षों से ढ़की रहती हैं, इसलिए इन पर्वत श्रेणियों का दृश्य अत्यन्त सुन्दर और मनमोहक प्रतीत होता है। यदि कालिंजर दुर्ग से चढ़कर नीचे की बस्ती का अवलोकन किया जाये तो बहुत ही हृदयग्राही दृश्य नेत्रों के सम्मुख दिखाई देता हैं। मृगधारा के समीप खड़े होकर निकट प्रवाहित होने वाली बागै नदी व सुखना नाले के दृश्य को देखा

जाये तो हृदय को मनमोह लेने वाला होता है। यहां से सूर्योदय और सूर्यास्त के दृश्य सभी को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। सूर्योदय की पहली किरण और सूर्यास्त की अंतिम किरणें जब जलाशयों पर अपना प्रकाश छोड़ती हैं तो वह दृश्य मनोहारी एवं मनमोहक लगता है। जब हम पहाड़ी खेरा के सन्निकट बृहस्पति कुण्ड के जल प्रपात को देखते हैं तो ऐसा लगता है कि कश्मीर और अन्य प्राकृतिक स्थानों से यह स्थल बहुत ही सुन्दर है। जब हम फतेह गंज के निकट सकरो जल प्रपात में जाते है तो वहां ऐसा महसूस होता है कि वर्षा की छोटी-छोटी बूंदें हमारे तन को आद्र कर रही हैं तथा कहीं -कहीं पर बादल पर्वतों को स्पर्श करते नजर आते हैं और इससे भी ज्यादा मनमोहक दृश्य फतेहगंज के निकट कोलुहा के जंगलों का है। जहां पर नाना प्रकार के प्राकृतिक दृश्य दिखाई पड़ते हैं। इसी क्षेत्र के एक कुण्ड से बानगंगा का उदय हुआ हैं। इस कुण्ड के अन्दर एक वृक्ष है जो सदैव जल में डूबा रहता है। यहीं पर एक वृक्ष ने एक प्राचीन मंदिर को अपने आगोस में ले लिया है। एक दूसरा वृक्ष अपने आगोस में दूसरे अन्य वृक्ष को लिए हुए हैं। यह विचित्र दृश्य अन्यत्र दिखाई नहीं देता और यहीं पर कोल जाति के आदिवासी निवास करते हैं जिनकी लोक संस्कृति की झलक कभी-कभी मिल जाती है।

यहां के प्राकृतिक सौन्दर्य को यहां पाये जाने वाले जीव-जन्तु और भी बढ़ा देते हैं। यहां के घनघोर जंगलों में विभिन्न प्रकार के खुंखार जानवर निवास करते हैं। एक समय में यहां लोग शिकार की इच्छा से आया करते थे। इस क्षेत्र में शेर, तेंदुआ, चीता, भालू आदि जानवर अक्सर दिखाई देते थे। इनके अतिरिक्त भेंडिया, गीदड़, जंगली कुत्ता, खरगोश, स्याही, चरखरा, अधलेंडा आदि जानवर थे किन्तु वर्तमान समय में जनसंख्या वृद्धि के कारण इनका लोप होता जा रहा हैं। यहाँ हिरन, रोज (नीलगाय) चिनकारा, छिकरा, सांभर, चीतरा, चौसींगा तथा भेड़िया आदि जानवर पाये जाते है। यहां के जलाशयों में विभिन्न प्रकार की मछलियाँ पायी जाती है। कुल मिलाकर लगभग 28 प्रकार की मछलियाँ हैं यहां के तालाबों में कछुआ, केकड़ा, मगर, घड़ियाल, पानी के सांप आदि उपलब्ध होते हैं।

यदि हम आकाशीय सौन्दर्य की तरफ देखें तो इसका दृश्य भी प्रातः काल विभिन्न प्रकार के पक्षियों के कलरव से गुंजित होता है। सभी पक्षी आकाश से वृक्षों तक तथा वृक्षों से आकाश तक उड़तें नजर आते हैं। यहां पर मोर, तोता, तीतर-बटेर, कौवा, लावा, फाख्ता (ड्योकी या सावर सारस, मुर्गा, राजहंस, बतख, भर-तीतर, सिलगिला, छपका, हाड़ल, लाल मुनैया, कबूतर ,गलगलिया, पिड़ी तथा जल मुर्गी आदि पक्षी सुबह से शाम तक कलरव करते हुए दर्शकों को मनोरंजन करते हैं। इस क्षेत्र की रात्रि भी अत्यन्त सुहावनी होती है। यदि कार्तिक पूर्णिमा के दिन कालिंजर परिक्षेत्र के ऐतिहासिक स्थलों का दर्शन किया जाये तो वह भी अत्यन्त मनोहारी प्रतीत होता है। प्रमुख रूप से पाथर कछार में प्राप्त वैश्या की मजार हैं, जो हैदराबाद की चार मीनार के समतुल्य है और ताजमहल का सौन्दर्य धारण कर लेती है। कालिंजर निःसंदेह प्राकृतिक सौन्दर्य का धनी स्थल है तथा इसी सौन्दर्य को अपने आंचल में समेटे हुए सुरक्षित किये हैं। यहां के प्राकृतिक

सौन्दर्य ने अनेक कवियों को काव्य प्रेरणा प्रदान की है।[100]

कालिंजर परिक्षेत्र का पर्यावरण स्वच्छ तथा स्वास्थ्य के लिए लाभदायक हैं। यहां अनेक प्रकार के औषधीय वृक्ष एवं झांडियां हैं जिनसे वायु स्पर्श करती हुई सुगन्ध बिखेरती हैं। इस सुगन्धित वातावरण में जो भी व्यक्ति सांस लेता है और वहां टहलता है उसे निश्चित ही कुछ न कुछ लाभ अवश्य होता है। यहां के वन क्षेत्र में नाना प्रकार के जंगली पुष्प खिलते है, जिनसे व्यक्ति को नेत्र सुख तो मिलता है साथ ही उसकी सुगन्ध से स्वास्थ्य लाभ भी प्राप्त होता है। इस तरह के स्वच्छ वातावरण से व्यक्तियों के शारीरिक दोष एवं मानसिक थकान कम होती है। यहां पर किसी प्रकार की कोई गंदगी नहीं हैं लेकिन जो प्राचीन तालाब जन उपेक्षा के शिकार हो गये है इसलिए वहां काई आदि जम गई है, जिसके कारण जल दूषित हो गया है। कालिंजर दुर्ग के सन्निकट सुरसरि गंगा का जल इस समय दूषित हो गया है। कालिंजर दुर्ग के ऊपर पाताल गंगा, मृगधारा, और स्वर्गारोहण ताल को छोड़ कर शेष जलाशय प्रदूषित हैं। परन्तु फिर भी स्वच्छ और सुरम्य प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण पर्यावरण अधिक प्रदूषित नहीं हैं। इस क्षेत्र में भ्रमण हेतु अक्टूबर से अप्रैल तक का समय सर्वोत्तम रहता है।

कालिंजर परिक्षेत्र के प्राकृतिक सुरम्य दर्शनीय स्थल-

1. कालिंजर दुर्ग में मृगधारा के समीप का दृश्य
2. बृहस्पति कुण्ड और बेधक के प्राकृतिक दृश्य
3. कोलुहा का जंगल
4. बान गंगा
5. मगरमुहा (फतेहगंज)
6. सकरो प्रपात (फतेहगंज)
7. पाथर कद्दार की दो प्राकृतिक झीलें
8. मड़फा में गौरी शंकर गुफा के समीप का दृश्य
9. रसिन में चन्द्रामाहेश्वरी पर्वत के ऊपर का दृश्य
10. रौलीगोंडा का पर्वतीय दृश्य

4. कालिंजर से जुड़ी हुई समस्यायें -

कालिंजर परिक्षेत्र ऐतिहासिक सांस्कृतिक ,धार्मिक एंव पुरातात्विक धरोहर का महत्वपूर्ण स्थल हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है। धार्मिक स्थल के रूप में कालिंजर आज भी प्रसिद्ध है यदि यह क्षेत्र किसी तरह से पर्यटन स्थल घोषित कर दिया जाता है, तब भी उसका विकास उस समय तक नहीं होगा जब तक कि पर्यटन से जुड़ी हुई समस्याओं का समाधान नहीं किया जाता।

सन् 1950 में कालिंजर के पुरातात्विक महत्व को इतिहासकारों और राजनीतिज्ञों ने समझा और तभी

से इसके विकास के लिए कार्य प्रारम्भ कर दिये गये। जब विन्ध्य प्रदेश का निर्माण हुआ। उस समय वहां के राज्यपाल के0 सन्थानम एवं उत्तर प्रदेश के राज्यपाल के0 एम0 मुंशी के माध्यम से कालिंजर विकास की परियोजनाएँ बनाई गई जिसके परिणाम स्वरूप कालिंजर-सतना मार्ग का निर्माण किया गया। कालान्तर में नरैनी के समीप बागे नदी पर पुल का निर्माण हुआ। इसके पश्चात बधेलावारी-कालिंजर मार्ग का निर्माण किया गया किन्तु कालिंजर का जो विकास होना चाहिए था, वह नहीं हो सका।

सन् 1980 के पश्चात इस क्षेत्र को विकसित करने के दोबारा प्रयास किये गये जिसमें कालिंजर निवासियों की भूमिका महत्वपूर्ण रही। प्रमुख रूप से श्री श्यामबिहारी वैद्य छिरौलिया और उनके पुत्र अरविन्द छिरौलिया काफी सक्रिय रहे। इन्होंने कालिंजर परिक्षेत्र से सम्बन्धित अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों का संकलन किया। इनमें पुराण, वेद तथा ऐसे ग्रंथ एकत्रित किये जिनमें कालिंजर का सांस्कृतिक एवं धार्मिक महत्व उजागर हुआ है। इसके अतिरिक्त अनेक हस्तलिखित पुस्तकों का संकलन भी उन्होंने किया। कालिंजर को विकसित करने के प्रयास श्री अनन्त बिहारी अर्जरिया (भूतपूर्व प्रधान) ने किया। डा0 सुशील कुमार सुल्लेरे तथा डा0 कन्हैयालाल अग्रवाल भी कालिंजर विकास के लिए सतत प्रयासरत रहे। इसी बीच कालिंजर परिक्षेत्र में अनेक मंत्रियों और अधिकारियों का आवागमन होता रहा मगर कोई खास विकास नहीं हुआ। इनका आवागमन केवल अफसोस जताना और आशायें बधाना ही था और कुछ नहीं।

बाँदा जनपद के पत्रकार भगवान दास गुप्ता ने कालिंजर को विकसित करने के लिए अधिकारियों का ध्यान आकर्षित किया। सन् 1989 में कालिंजर में एक सेमिनार का आयोजन हुआ। इस सेमिनार में आर0 ई0 एस0, पी0 डब्ल्यू0 डी0 , जल निगम, पुरातत्व विभाग, वन विभाग आदि के अधिकारियों ने भाग लिया। इसी के परिणाम स्वरूप कालिंजर दुर्ग में जाने के लिए पक्की सड़क का निर्माण हुआ। इसी के साथ जल, विद्युत की अनेक योजनाएं स्वीकार की गई। पुरातात्विक सामग्री के संरक्षण हेतु पुरातत्व विभाग के अधिकारियों की नियुक्तियाँ की गई जिलाधिकारी राकेश गर्ग भी उपस्थित थे। इसी सेमिनार में प्रसिद्ध इतिहासकार श्री राधा कृष्ण बुन्देली ने अपने सुझाव दिये। उसके पश्चात उन्होंने ऐतिहासिक स्थलों का चित्रांकन किया तथा एक फिल्म का निर्माण कराया। जो 1992 में बनकर तैयार हुई। इसमें प्रशासन का पूर्ण सहयोग रहा।

कालिंजर को विकसित करने के लिए बराबर प्रयास होते ही रहे है। पं0 जवाहर लाल नेहरू डिग्री कालेज,बाँदा के इतिहास विभागाध्यक्ष (प्रो0) बी0 एन0 राय ने कालिंजर के संदर्भ में अनेक सेमिनार किये तथा एक पुस्तक का प्रकाशन भी किया। जिसमें अनेक विद्वानों के लेख प्रकाशित किये गये। इसके पूर्व पं0 गोवर्धन दास त्रिपाठी ,पं0 हरिप्रसाद शर्मा, वासुदेव त्रिपाठी आदि ने कालिंजर पर अपनी पुस्तकें लिखी है। इतना सब कुछ होने के पश्चात भी कालिंजर आज समस्याओं से ग्रसित है और यही कारण है कि कालिंजर विदेशी पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करने में पूरी तरह असमर्थ है। यह समस्यायें एक नहीं

अनेक है, जो इस प्रकार है।-

1. आवागमन के साधनों का अभाव-

एक ओर हम कालिंजर को पर्यटक स्थल के रूप में विकसित करने का स्वप्न देखते हैं और दूसरी ओर पर्यटकों को इस क्षेत्र में लाने के लिए उपयुक्त साधनों का प्रबंध नहीं कर पाते । कालिंजर में आवागमन का अभाव सा है जो भी मार्ग कालिंजर पहुंचने के लिए उपलब्ध हैं वे बहुत अच्छी अवस्था में नहीं है। बाँदा -सतना मार्ग में कौहारी के निकट बागे नदी में पुल न होने के कारण वहां लोग आसानी से नहीं पहुंच सकते। इसी प्रकार पन्ना-कालिंजर मार्ग जो पहाड़ी खेरा होते हुए कालिंजर आता है। उस मार्ग में सूरजकुण्ड के नजदीक से बृहस्पति कुण्ड तक जाने का कोई मार्ग निर्मित नहीं हुआ और न कौहारी से ही बृहस्पति कुण्ड जाने का मार्ग है। यदि व्यक्ति चित्रकूट से कालिंजर आना चाहता है, तो वह भरत कूप, मड़फा, बिलहरिया मठ, बघेलाबारी, सिंधौरा होते हुए कालिंजर पहुंच सकता है किन्तु इस मार्ग की हालत भी बहुत खराब है। सतना से पाथर कद्दार तक पक्के मार्ग का निर्माण हुआ है लेकिन पाथरकद्दार से फतेहगंज ,नरदहा होते हुए कालिंजर तक का मार्ग बहुत खराब स्थिति में है। बदौसा से फतेहगंज, सकरो, बानगंगा, मगरमुहा, वीरगढ़ आदि स्थानों के लिए अभी तक कोई समुचित मार्ग का निर्माण नहीं हो पाया। रौली, कल्याणगढ़, गोंडा, रसिन वाले मार्ग भी बिगड़ी हालत में हैं जिनमें वाहनों का चलना अत्यन्त दूभर है। केवल बदौसा से फतेहगंज तक का मार्ग निर्मित हुआ है, जो बघेलावारी तक सही है उसके बाद का मार्ग अत्यन्त खराब है। इस क्षेत्र में सबसे बड़ी समस्या सड़कों का खराब होना है।

मार्गों की उचित व्यवस्था न होने के कारण आवागमन के साधनों का विस्तार भी अभी इस क्षेत्र में नहीं हुआ है। बदौसा रेलवे स्टेशन से रेलवे समय-सारणी के अनुसार बसों का संचालन कालिंजर परिक्षेत्र के लिए नियमित कराया जाये। चित्रकूट से मड़फा, बघेलावारी होती हुई बसें कालिंजर तक चलाई जायें। सतना, पाथरकद्दार मार्ग से जो बसें पाथरकद्दार तक आती है उन्हें कालिंजर तक बढ़ाया जाय। खजुराहों से कालिंजर के लिए वायुयान सेवाओं के अनुसार बसों का संचालन कराया जायें, ये बसें पन्ना, पहाड़ी खेरा, अजयगढ़ चलाई जायें। इसके अतिरिक्त रामनगर में जो पुल निर्मित हुआ है, उसने खजुराहों, कालिंजर का नया मार्ग खोल दिया है। यह मार्ग छतरपुर, लौड़ी चंदला, सरबई होता हुआ रामनगर से कालिंजर तक आता है। इसमें भी बसों का संचालन आवश्यक है। इसी प्रकार कालिंजर धर्मपुर मार्ग को विकसित किया जाना परम आवश्यक है तथा इसमें भी बसें चलाना आवश्यक है। जब तक आवागमन के साधनों का विकास नहीं होगा, कालिंजर का विकास एक दिवास्वप्न ही रहेगा।

2. आवासीय व्यवस्था का अभाव-

यदि पर्यटक किसी प्रकार से कालिंजर को देखने के लिए आ भी जाये, तो उसके लिए सबसे बड़ी मुश्किल यह है कि अब तक वहां कोई विशिष्ट आवासीय व्यवस्था नहीं है। केवल कालिंजर तलहटी में एक

वन विभाग का डाक बंगला है जो शासकीय अधिकारियों के लिए उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त एक डाक बंगला कालिंजर दुर्ग के ऊपर रामकटोरा तालाब के निकट है। इसमें भी प्रायः साधनों का अभाव रहता है, कोई भी व्यक्ति यहां आसानी से ठहर नहीं पाता, अभी हाल में ही प्रशासन के प्रयासों से पर्वत के ऊपर आवासीय होटल का निर्माण किया गया है, किन्तु उसमें भी अभी साधनों का अभाव है। अन्य आवासीय व्यवस्था राठौर महल के बगल में की गई है, जिसे रैन बसेरा का नाम दिया गया है, किन्तु रैन बसेरा में साधनों का अभाव और गंदगी का साम्राज्य है। इधर केवल गधे और सुंअर अधिकता में नजर आते हैं। कोई भी शासकीय व्यक्ति इस रैन बसेरा की व्यवस्था के लिए अब तक नियुक्त नहीं हुआ।

यदि व्यक्ति यहां ठहर भी जाय तो उसके लिये भोजन की व्यवस्था कर पाना अत्यन्त दुर्लभ बात है। यह क्षेत्र पूरी तरह से अविकसित ग्रामीण क्षेत्र है। जहां साधनों का अभाव रहता है। पर्यटकों को अपनी पसंद का भोजन नहीं मिल पाता है। इसी से वह कठिनाई का अनुभव करता है। भोजन के अतिरिक्त कालिंजर दुर्ग के ऊपर पेय जल का अभाव है। वहां शुद्ध पेय जल केवल मृगधारा और नीलकण्ठ मंदिर के सरोवर सरग्वाह में ही उपलब्ध हो पाता है। जिससे यात्री कालिंजर भ्रमण में अत्यन्त कठिनाई महसूस करते हैं। एक बार कालिंजर आने वाला यात्री कठिनाइयों के कारण यहां दुबारा आने का प्रयास नहीं करता। यहीं पर यह कहावत चरितार्थ हो जाती है। कान पकड़ कर कालिंजर दिखा दो।

3. सुरक्षा का अभाव-

अगर विदेशी या देशी पर्यटक यहां भ्रमणार्थ आता है तो वह अपने आपको पूरी तरह असुरक्षित अनुभव करता है। जहां पर कालिंजर परिक्षेत्र के पुरातात्विक स्थल हैं वहां चोर लुटेरे, और डाकूओं का बाहुल्य है। इस क्षेत्र में कोई भी घटना कभी भी घट सकती है। यह परिक्षेत्र बदौसा, फतेहगंज, कालिंजर थाने के अन्तर्गत आता है। इन थानों में पुलिस बल की संख्या बहुत अधिक नहीं है जो भी पुलिस अधिकारी या सिपाही तैनात रहते है वे निष्क्रिय है तथा जन सुरक्षा में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं हैं। कालिंजर दुर्ग, मड़फा तथा फतेहगंज के इलाकों में यात्रियों के साथ लूटपाट की घटनायें हुई हैं। जब तक यात्रियों की पूर्ण सुरक्षा की गारण्टी शासन नहीं लेता, उस समय तक कोई भी यात्री यहाँ आने का साहस नहीं करेगा।

4. पुरातात्विक सामग्री के रख-रखाव का अभाव -

यहां के ग्रामीण अंचल के निवासी पुरातात्विक सामग्री से कोई लगाव नहीं रखते और न ही उसे सुरक्षित रखने के कोई उपाय सोचते हैं। इसलिये यहां की पुरातात्विक सामग्री न जाने कब से चोरी जाती रही है और आज भी चोरों के हांथ लग रही है। इस सदंर्भ में यह जानकारी प्राप्त हुई है कि बाँदा जनपद के मुख्य चिकित्सा अधिकारी श्री पिल्ले कालिंजर की मूर्ति चोरी में पकड़े गये इन्हें बदौसा पुलिस ने पकड़ा था। इसके अतिरिक्त पूर्व मंत्री महावीर सिंह व पूर्व जिलाधिकारी यहां की पुरातात्विक सामग्री अपने साथ में ले गये थे। एक अन्य सरकारी कर्मचारी ने कालिंजर की पुरातात्विक सामग्री को चुराने का प्रयास किया

यह बात पिछले वर्ष की है। बहुत कहा सुनी के पश्चात पुरातत्व विभाग ने यहां पर कुछ सुरक्षा व्यवस्था उपलब्ध कराई है, किन्तु नरदहा, पाथरकद्दार और फतेहगंज में बिलहरिया मठ के समीप इस पुरातात्विक सामग्री की उपेक्षा आज भी दिख जाती है। जब तक यह पूर्ण संरक्षित नहीं होगी तथा पुरातात्विक महत्व के स्थल पूर्ण संरक्षित नहीं किये जायेंगे। उस समय तक इन्हें कौन देखने आयेगा। इनका संरक्षण एवं सुन्दरीकरण दोनों ही आज के परिवेश में आवश्यक हैं।

5. मार्ग दर्शक एवं गाइड का अभाव-

जो भी पर्यटक कालिंजर परिक्षेत्र में भ्रमण हेतु आता है और सम्पूर्ण स्थल देखना चाहता है तब वह सही मार्ग दर्शक या गाइड का अभाव महसूस करता है। उसे ऐसा गाइड चाहिए जो समस्त स्थलों के सन्दर्भ में पूरी जानकारी रखता हो और साथ ही ऐसा गाइड हो जो ऐतिहासिक स्थलों के संदर्भ में उन्हें उन्हीं की भाषा में जानकारी दे सके। कालिंजर निवासी जो भी इतिहास जानते हैं, वह तर्क संगत ढंग से प्रस्तुत नहीं कर पाते। इसका मूल कारण जनता की अशिक्षा और ज्ञान का अभाव है। कालिंजर परिक्षेत्र में अनेक ऐसे धार्मिक स्थल उपलब्ध हुए हैं जो निर्माण शैली की दृष्टि से खजुराहों के समकक्ष है। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि खजुराहो की पंचायतन नागरीय शैली का शुभारम्भ कालिंजर परिक्षेत्र से ही हुआ होगा। आवश्यकता इस बात की है कि इसे विकसित करने के लिए प्रशिक्षित गाइड यहां नियुक्त किये जायें जो पर्यटकों को उनकी भाषा में ही धार्मिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व को समझा सकें।

6. आमोद-प्रमोद के साधानों का अभाव -

कालिंजर में जो पर्यटक आना चाहता है या आता है वह केवल ऐतिहासिक स्थलों को देखकर ही नहीं सुतुष्ट होना चाहता, अपितु वह चाहता है कि उसे विविध प्रकार के मनोरंजन के साधन उपलब्ध हों। उनके मनोरंजन के लिए लोककला, लोकगीत एंव लोकसंस्कृति को प्रदर्शित करने वाली कोई संस्था ऐसी नहीं है जो उनका मनोरंजन कर सके और उनका यहां की लोकसंस्कृति से परिचय करा सके। इस क्षेत्र में यदि लोक संस्कृति समिति का निर्माण हो जाय और आकर्षक ढंग से आल्हा गाइकी, लमटेरा, ग्रामीण अंचल के लोकनृत्य,दिवारी,राई, इत्यादि विकसित किये जाय। इसके अतिरिक्त कोलों का नृत्य भी समय-समय पर किया जाये तो यहां आने वाले यात्री मनोरंजन का लाभ उठा सकेंगे। इन सबके अलावा यहां पर चिड़ियाघर, पशु-विहार का निर्माण यदि हो जाय तो यात्रियों को यह मनोरंजन बार-बार आने के लिए प्रेरित करेगा। कालिंजरी पहाड़ी से कालिंजर दुर्ग तक रज्जु -मार्ग निर्मित कर दिया जाये तो यात्रियों के मनोरंजन एवं आनन्द में चार-चाँद लग जायेगें। इसके अतिरिक्त प्रशासन के लिए यह आय का श्रोत भी होगा। कालिंजर में एक संग्रहालय भी निर्मित किया जाय, जिसमें उपलब्ध बहुमूल्य दस्तावेज, अस्त्र-शस्त्र एवं पाण्डु लिपियाँ सुरक्षित रह सकें।

7. कालिंजर से सम्बन्धित साहित्य का अभाव-

कालिंजर जो भी व्यक्ति आता है उसे यह जिज्ञासा होती है कि उसे कुछ ऐसा साहित्य उपलब्ध हो जिससे उस परिक्षेत्र के बारे में उसे पूरी जानकारी उपलब्ध हो। अब तक कोई भी ऐसी किताब श्रजित नहीं हुई जिसमें कालिंजर के सम्पूर्ण इतिहास को उसके साक्ष्यों सहित वर्णित किया गया हो। जो भी किताबें यहां उपलब्ध होती हैं, उनमें वहां के धार्मिक महत्व को ही उजागर किया गया है। उनमें न तो वास्तविक राजनीतिक घटनाओं का उल्लेख मिलता है और न ही प्राप्त वास्तुशिल्प का शास्त्रीय विश्लेषण उपलब्ध होता है। पूरे कालिंजर परिक्षेत्र में केवल एक मात्र श्री श्याम बिहारी वैद्य और उनके पुत्र श्री अरविन्द छिरौलिया ही हैं, जहां जाकर पर्यटक थोड़ी बहुत जानकारी कालिंजर से संदर्भ में प्राप्त कर लेता है किन्तु उनके बताने का ढंग भी अतिश्योक्तिपूर्ण है। जिसकी वजह से यात्री आसानी से विश्वास नहीं कर पाता । कालिंजर जाने वाले समस्त पर्यटक व अधिकारी जन इन्ही के यहाँ जाकर कालिंजर की अल्प जानकारी प्राप्त करते हैं। कालिंजर के ऐतिहासिक स्थलों के फोटों और उनके एलबम पर्यटक विभाग द्वारा व पुरातत्व विभाग द्वारा यात्रियों को उपलब्ध नहीं कराये जाते। खजुराहो की भांति कालिंजर की मूर्तियों प्लास्टर आफ पेरिस से बनवाकर नहीं उपलब्ध कराई जाती हैं। इसी वजह से यात्री अपने साथ कोई स्मृति चिन्ह नहीं ले जा पाता है। उनके साथ केवल मायूसी और खाने वाले फल अमरूद, शरीफा, सीमा से बड़ी मूली एवं ईख(गन्ना) के अतिरिक्त कुछ नहीं जाता है। कालिंजर में लोग खास-तौर पर कार्तिक पूर्णिमा शिवरात्रि एवं मकर संक्रान्ति के दिन ही जाते है।

8. प्रचार-प्रसार की न्यूनता का अभाव-

कालिंजर जो विश्व का सबसे प्राचीन स्थल है, जिसका वर्णन सभी महत्वपूर्ण ग्रन्थों में उपलब्ध है, उस स्थल के लिए प्रचार-प्रसार नहीं किया गया है जिस प्रकार का प्रचार आगरा के ताजमहल व खजुराहों के मंदिरों के लिए किया गया यदि उसी प्रकार का प्रचार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कालिंजर का किया जाता तो निश्चित ही आज यहां पर्यटक उतनी ही बड़ी तादाद में आता, जितना वह आगरा एवं खजुराहों जाता है। इसलिए इस स्थल का प्रचार-प्रसार होना अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। कालिंजर दुर्ग की दीवारें चौड़ाई और सुदृढ़ता में चीन की दीवार जैसी हैं। इनके प्रति दर्शकों को आकर्षित किया जा सकता है तथा इनकी निर्माण शैली बड़ी विचित्र और आश्चर्य जनक है।

9. कालिंजर विकास के प्रति यहां के नागरिकों की उदासीनता-

ऐसा प्रतीत होता है कि कालिंजर बस्ती के निवासी या तो चेतना शून्य है या फिर उन्हें अपनी मातृ-भूमि और जन्म स्थली से कोई लगाव नहीं है। इसलिए न तो वे पुरातात्विक महत्व की इमारतों का रख-रखाव कर पाते हैं और न उसकी सुरक्षा के उपाय सोच पाते हैं। कालिंजर अनेक समस्याओं से ग्रसित है साथ ही निर्धनता का शिकार भी है। ऐसा लगता है कि यहां की जनता इन समस्याओं से उबरना ही नहीं

चाहती हैं। कालिंजर के लिए यह जरूरी है कि चन्देल कालीन सुप्रसिद्ध नगर का विकास एक माडल टाऊन के रूप में हो। यह तब तक सम्भव नहीं होगा जब तक कि यहां के नागरिक विकास के प्रति जागरूक न हों।

समस्याओं के समाधान हेतु उपाय-

1. मार्गों का समुचित निर्माण किया जाय।
2. आवागमन के साधनों का विकास किया जाय तथा इसे विभिन्न क्षेत्रों से रेलमार्ग, स्थलमार्ग और वायुमार्ग से जोड़ा जाये।
3. पुरातात्विक महत्व के स्थलों का जीर्णोद्धार तथा सुन्दरीकरण किया जाना चाहिए।
4. पर्यटकों के लिए पशु विहार खोला जाये।
5. इस क्षेत्र में एक आकर्षक संग्रहालय व पुस्तकालय स्थापित किया जाना चाहिए।
6. पर्यटकों की सुरक्षा के लिए विशेष व्यवस्था हो।
7. आवास एवं समुचित भोजनालय की व्यवस्था हो।
8. इस क्षेत्र में प्रशिक्षित विदेशी भाषा जानने वाले गाइड नियुक्त किये जाय।
9. कालिंजर से सम्बन्धित इतिहास और साहित्य का प्रकाशन कराया जाय तथा यहां के पुरातात्विक महत्व के स्थलों के फोटो एलबम तैयार कराये जायें।
10. कालिंजर के स्थलों के अनेक स्मृति चिन्ह, धातु प्रस्तर एंव प्लास्टर आफ पेरिस के तैयार कराये जाये।
11. कालिंजर को मॉडल टाउन के रूप में विकसित किया जाय।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. पद्मपुराण, पातालखण्ड, उमा-महेश्वर संवाद, 28, पूना, 1893-94 ।
2. इण्डियन ऐन्टीक्वेरी, वाल्यूम 37, पृ0 136-37 ।
3. शर्मा, हरिप्रसाद, कालिंजर, प्रथम संस्करण, इलाहाबाद, 1968, पृ0 13, : वायु पुराण, 23, 104, : लिंग पुराण (पूर्वार्द्ध) 24, 104 ।
4. सुल्लेरे, सुशील कुमार, अजयगढ़ और कालिंजर की देव प्रतिमाएँ, दिल्ली, 1987, पृ0 30-45 ।
5. वेदव्यास, महाभारत, आदिपर्व, सं0 2044, गोरखपुर, अध्याय 63, पृ0 172 ।
6. "कालंजरे महाराज कौलपत्यं प्रदीयताम्।"

   बाल्मीकि, रामायण, खण्ड दो, प्रक्षिप्तः सर्गः दो, 38, पृ0 1598 ।
7. महाभारत, पूर्वो0, पृ0 172 ।
8. निगम, एम0 एल0, कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड, दिल्ली, 1983, पृ0 11-14 ।
9. बाजपेयी, के0 डी0, जाग्रफिकल इन साइक्लोपीडिया ऑफ एन्श्येन्ट एण्ड मेडुवल इण्डिया, बनारस, 1967, पृ0 96 ।
10. पाण्डेय, विमलचन्द्र, प्राचीन भारत का इतिहास, मेरठ, 1983-84, पृ0 63 ।
11. सुल्लेरे, सुशील कुमार, पूर्वो0, पृ0 30-80 ।
12. जगनिक, आल्हखण्ड (महोबे की लड़ाई), नारायण प्रसाद सीताराम द्वारा सम्पादित।
13. चन्दवरदाई, पृथ्वीराजरासो, सम्पादक- मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या और बाबू श्याम सुन्दरदास बनारस, 1913 ।
14. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, बनारस, 1961, पृ0 181 ।
15. श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल, दिल्ली सल्तनत, आगरा, 1989, पृ0 90 ।
16. मिश्र, केशवचन्द, चन्देल और उनका राजत्व काल, वाराणसी, 1974, पृ0 120-125 ।
17. तिवारी, गोरेलाल, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, प्रयाग, विक्रमी सम्वत् 1990, पृ0 88 ।
18. श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल, मुगलकालीन भारत, आगरा, 1981, पृ0 101-102 ।
19. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वो0, पृ0 299-302 ।
20. पाण्डेय, अयोध्या प्रसाद, चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, प्रथम संस्करण, प्रयाग, 1968, पृ0 192, 225 ।
21. मिश्र, केशवचन्द, पूर्वो0, पृ0 223-259 ।
22. सुल्लेरे, सुशील कुमार, पूर्वो0, पृ0 7-25 ।
23. कनिंघम, आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट, वाल्यूम 21, पुनर्मुद्रण, दिल्ली, पृ0 91 ।

24. महाभारत, वनपर्व, अध्याय 85, श्लोक 56, 57, पृ0 1205-1206 ।
25. मिश्र, केशवचन्द, पूर्वो0, पृ0 90-93 ।
26. सिंह, दीवान प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग एक, बनारस, 14 फरवरी सन् 1929 ई0, पृ0 62-63 ।
27. मिश्र, केशवचन्द, पूर्वो0 पृ0 156-163 ।
28. बाणभट्ट, कादम्बरी, प्रथम भाग, बनारस, 1997, पृ0 67-75 ।
29. सुल्लेरे, सुशील कुमार, पूर्वो0, पृ0 31, 75 ।
30. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वो0, पृ0 299-303 ।
31. ईश्वरी प्रसाद, प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म और दर्शन, पांचवां संस्करण, इलाहाबाद, 1990, पृ0 28 ।
32. बाँदा गजेटियर, लखनऊ, 1977, पृ0 29 ।
33. निगम, एम0 एल0, पूर्वो0, पृ0 7-8 ।
34. बाजपेयी, के0 डी0, कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वाल्यूम दो, 1960, पृ0 9 ।
35. सिंह, दीवान प्रतिपाल, पूर्वो0, पृ0 8-13 ।
36. अग्रवाल, कन्हैयालाल, विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल, सतना, 1987, पृ0 18-19, 77 ।
37. उत्तर प्रदेश वार्षिकी, 1987-88, पृ0 59, : उत्तर प्रदेश वार्षिकी, 1993-94, पृ0 44 ।
38. विजय कुमार, प्राग, बाँदा ।
39. निगम, एम0 एल0, पूर्वो0, पृ0 8 ।
40. त्रिवेदी, एस0 डी0, बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, प्रथम संस्करण, झाँसी, 1984, चित्र संख्या 22, पृ0 9-10 ।
41. अग्रवाल, कन्हैयालाल, पूर्वो0, पृ0 77, : महाभारत, वनपर्व, 86, 56, : देवी भागवत, बम्बई, 1920, 26, 34, : मत्स्य पुराण, पूना, 1907, 121, 54, : मनसुखराममोर, 77, 94, : ब्रम्हाण्ड पुराण, बम्बई, 1913, 3, 3, 100, : विष्णु पुराण, कलकत्ता, 1882, 2,2,30 ।
42. मिश्र, केशवचन्द, पूर्वो0, पृ0 221, 231 ।
43. वराहमिहिर, वृहद्संहिता, अनुवाद- बी0 सुब्रह्मण्यम्, अध्याय-53 ।
44. मिश्र, केशवचन्द, पूर्वो0, पृ0 23 ।
45. सुल्लेरे, सुशील कुमार, पूर्वो0, पृ0 18 ।
46. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वो0, पृ0 234 ।
47. मिश्र, केशवचन्द, पूर्वो0, पृ0 223 ।

48. बाँदा गजेटियर, पूर्वो0, पृ0 287-297 ।
49. पाण्डेय, अयोध्या प्रसाद, पूर्वो0, पृ0 199 ।
50. मिश्र, केशवचन्द, पूर्वो0, पृ0 244 ।
51. वही, पृ0 231 ।
52. कनिंघम, आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट, वाल्यूम 21, ए प्लेट 10 ए, पृ0 34 ।
53. वही, बी प्लेट 10 बी, पृ0 34 ।
54. वही, एच0, पृ0 37-38 ।
55. वही, पृ0 28-29 ।
56. बोस, निमाई सघन, हिस्ट्री ऑफ चन्देलाज ऑफ जैजाकभुक्ति, कलकत्ता, 1956, पृ0 80-82 ।
57. वही, पृ0 83 ।
58. मित्रा, एस0 के0, दि अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो, कलकत्ता, 1958, पृ0 226 ।
59. मित्रा, एस0 के0, पूर्वो0, पृ0 229-233 ।
60. बोस, निमाई सघन, पूर्वो0, पृ0 93 ।
61. हबीबुल्ला, ए0 बी0 एम0, दि फाउण्डेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया, इलाहाबाद, 1961, पृ0 106 ।
62. सिंह, दीवान प्रतिपाल, पूर्वो0, पृ0 109 ।
63. जनरल कनिंघम, क्वायन्स ऑफ मेडुवल इण्डिया, भूमिका ।
64. सिंह, दीवान प्रतिपाल, पूर्वो, पृ0 237-38 ।
65. बाल्मीकि, रामायण, भाग दो, प्रक्षिप्तः सर्ग : दो, 38, पृ0 1598 ।
66. महाभारत, भाग दो, वनपर्व, अध्याय 85, श्लोक 56, पृ0 1205 ।
67. वायुपुराण, श्लोक 23, पृ0 104 ।
68. लिंगपुराण, (पूर्वार्द्ध), 24, 104 ।
69. कूर्मपुराण, 36, 35-38 ।
70. वामनपुराण, 90, 27 ।
71. ब्रम्हाण्डपुराण, 3, 13, 100 ।
72. विष्णुपुराण, 2,2,30 ।
73. भागवतपुराण, 5, 16, 26 ।
74. स्कन्दपुराण, 4, 6, 25 ।
75. ब्रम्हपुराण, 2, 146, 1 ।

76. पद्मपुराण, (उत्तरखण्ड), 196, 14 ।

77. अग्निपुराण, 109, 23 ।

78. गरुणपुराण, 81, 18, 19 ।

79. मत्स्यपुराण, 121,54 ।

80, देवीभागवत (उत्तरार्द्ध), 30, 62 ।

81. इण्डियन ऐन्टीक्वेरी, भाग 37, पृ0 135 ।

82. आर्क्योलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग 21, पृ0 78 ।

83. जनरल ऑफ ऐशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, 1895, पृ0 255 ।

84. पाजिटर, एन्श्येन्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडीशन, दिल्ली, 1962, पृ0 259, 269, 281 ।

85. डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापरनेम्स, भाग 1, पृ0 911 ।

86. मैक्रिण्डल (अनूदित), एन्श्येन्ट इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाई टालमी, लन्दन, 1885, पृ0 135 ।

87. एपीग्राफिया इण्डिका, भाग एक, पृ0 325 ।

88. रे, एच0 सी0, दि डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया, वाल्यूम 2, नई दिल्ली, 1973, पृ0 670।

89. जनरल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, भाग 44, पृ0 29, 33 ।

90. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, भाग 14, पृ0 310, 331 ।

91. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, सम्पादक एवं अनुवादक सामा शास्त्री, मैसूर, 2,2 ।

92. मजूमदार, आर0 सी0 एण्ड पुष्कर, ए0 डी0, दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डियन पीपुल, बम्बई, 1960, पृ0 248, 250 ।

93. ऐज ऑफ इम्पीरियल युनिटी, पृ0 98-99 ।

94. बाँदा गजेटियर, पूर्वो0, पृ0 287-88 ।

95. सिंह, दीवान प्रतिपाल, पूर्वो0, पृ0 66-68 ।

96. वही, पृ0 29 ।

97. वही, पृ0 16 ।

98. वही, पृ0 64-65 ।

99. बाँदा गजेटियर, पूर्वो0, पृ0 17-18 ।

100. सिंह, दीवान प्रतिपाल, पूर्वो0, पृ0 41-45 ।